# त्रिपुरी का कलचुरि वंश

---

चिन्तामणि हटेला "मणि"

हटेला ग्रंथागार
हिन्दू समाज प्रेस, कीटगञ्ज
प्रयाग

एक रुपया मात्र

निशा गई आई उषा, जागो बन्धु 'कलाल'।
सिंह पुत्र तुम सो रहे, उदयाचल है लाल ॥
देखो बीते दिवस निज, निज जननी के भाल।
मातृभूमि के रत्न हे! खल के हे जंजाल ॥
तुम्हरी महिमा न घटी, यदपि हुये बहु काल।
दिग् दिगन्त में छा रही, कलचुरि कीर्ति विशाल ॥
कलचुरि कच्छुरि, कटसुरी, कत्सुरि शुण्डि भुआल।
कलचुरि के प्रतिरूप सब, कत्स्युरि और कलाल ॥
उठ, स्थित हो सजग तू, तन्द्रा तज तत्काल।
मातृभूमि के सुहित हित, चल पड़ जला मशाल ॥
'हरपल' और 'कलभ्र' कुल, महावीर 'खरवाल'।
दिव्य ज्योति दिखा गये, 'मणि' जननी के लाल ॥

# कुछ शब्द

दिवगत महाराजा साहब बहादुर कपूरथला की अध्यक्षता में होनेवाले सर्व वर्ग सम्मेलन के अवसर पर मुझे जातीय इतिहास पर बोलने के लिये आमंत्रित किया गया। मैं खड़ा हुआ। आरंभिक बात इतिहास विषय पर कह ही रहा था कि अम्बाला के एक सज्जन 'कलाल' शब्द सुनकर भड़क उठे। उन्होंने मुझे बोलने से रोक कर अनेक प्रश्न किये। यह प्रश्न कुछ अच्छे मूड में नहीं थे। प्रश्नों के उत्तर तत्काल जो मैंने उचित समझे दिये। परन्तु उनके प्रश्नों ने मेरा चित्त खिन्न कर दिया, अतएव जैसे तैसे आगे कहने वाली बात को संक्षेप में कह कर मैं अपने स्थान पर जा बैठा।

कुछ देर बाद मैं मंच से उतर कर बाहर की ओर चला। मार्ग में कुछ अहलुवालिया कलाल सज्जन 'कलाल' शब्द पर टीका टिप्पणी कर रहे थे। जिसका सारांश था कि वे कलाल कहने और कहलवाने से चिढ़ते हैं। मैं उनसे कुछ न बोल कर उनकी बातें सुनता हुआ नुमायश के क्षेत्र की ओर चला गया। मार्ग में मैंने सोचा, यह लोग अपने इतिहास से अनभिज्ञ हैं। 'कलाल' शब्द जो कलाल जाति के लिये क्षत्रिय होने का सब से प्रबल प्रमाण है। उसे ही यह लोग ठुकरा रहे हैं। कपूरथला का अहलुवालिया राजवंश और उस राजवंश के सिक्के, काश्मीर का चकवंश और उसके सिक्के, जिस कलाल शब्द को दिन दूनी, रात चौगुनी ज्योति देते हैं, उससे अपना मेल न बैठा कर और समाज के अज्ञ लोगों में अपने इतिहास का प्रचार न कर के यह अहलुवालिया बन्धु भी उसी ओर जाना चाहते हैं, जिस

ओर जाने से भविष्य में इन्हें शताब्दियों के पिछले इतिहास का कोई उचित ज्ञान न रह जायगा। भारतीय समाज में हैहय क्षत्रिय वंश के अनेक ऐसे समूह हैं जिन्हें अपने इतिहास की जानकारी प्राप्त करने के लिये गहरे अंधेरे में टटोलना पड़ता है और ऐसा इसीलिये हुआ है कि वे कलाल शब्द से चिढ़ते थे। अपने को कलाल कहना या कहलवाना उन्हें पसन्द न था। परिणाम स्वरूप उन्हें अपने इतिहास का ठीक ज्ञान नहीं है।

हिन्दी के किसी भी कोष (पारिभाषिक शब्द संग्रह) को उठाकर देखिये, आपको 'कलाल' शब्द का पर्यायवाची 'शौण्डिक' शब्द मिलेगा। यह शौंडिक पुराण के नीचे लिखे श्लोकों के अनुसार—

जयध्वजात्तालजघास्तालजंघा ततः सुताः।
हैहयाना कुलाः पंच भोजाश्चावन्तयस्तथा॥
वीतिहोत्राः स्वयंजाताः शौण्डिकेयस्तथैव च।
वीतिहोत्रादनन्तोऽभुदनन्ता दुर्जनो नृपः॥

अग्नि० २७४।१०,११

तेषा कुले मुनि श्रेष्ठा हैहयाना महात्मना॥
वीतिहोत्राः सुजाताश्च भोजाश्चावन्तयः स्मृताः॥
तौंडिकेराश्च विख्यातास्तालजंघास्तथैव च।
भारताश्च सुजाताश्च बहुत्त्यवान्नानुकीर्तितः॥

ब्रह्म० १३।२०४, २०५

तेषां पंच कुला येव हैहयाना महात्मनां।
वीतिहोत्राः स्वयजाता भोजाश्चावन्तयस्तथा।
तुण्डिकेराश्च विख्यातास्तालजंघाश्च कीर्तितः
वीतिहोत्र सुतश्चापि अनन्तो नाम वीर्यवान्॥

पद्म० ५.१२।१४, १५

तेषा पंचगणाः ख्याता हैहयानां महात्मनां।

वीतिहोत्रा ह्यसख्याता भोजाश्चवन्तयस्तथा ॥
तुण्डिकेराश्च विक्रान्तास्तालजघास्तथैव च ।
वायु० २।३२।५१,५२

तेषां पञ्च कुला ख्याता हैहयानां महात्मना ।
वीतिहोत्राश्च शायाता भोजाश्चावन्तयस्तथा
कुण्डिकेराश्च विक्रान्तास्तालजघास्तथैव च ।
मत्स्य० ४४।४८,४९

बल्लाल चरित २।१०।११—२ में लिखा है —
तेषांकुलेऽस्ति विमले हैहयानां महात्मना ।
वीतिहोत्रा स्वयमाता भोजाश्चावन्तय स्मृता ।
शौंडिकराश्च विख्यातास्तालजघास्तथैव च ।
मतास्च सुजाताश्च पुराणे कथिता मया ॥

उस पवित्र क्षत्रिय कुल से थे जिसे प्राचीन समय मे महात्मा की उपाधि से विभूषित किया गया था। जिसके अन्य अनेक शौंडिक, तुण्डिकेर, कुण्डिकेर (विदर्भ देश में जिनकी एक राजधानी कुण्डिनपुर थी) पर्यायवाची नाम मिलते हैं। जो एक ही जाति और एक ही कुल के लिये प्रयुक्त हुये हैं।

उपरोक्त शौंडिक शब्द एक पद और उपाधि है। जो ऐतिहासिक और बुद्धिमाह्य है। इसी प्रकार "कलाल" शब्द भी है।

पटना के महामहोपाध्याय प० हरिहर कृपालु द्विवेदी, महामहोपाध्याय प० रघुनन्दन त्रिपाठी, साहित्याचार्य प० रामावतार शर्मा एम० ए०, विद्याभूषण श्री प० अनन्तप्रसाद शास्त्री आदि प्रभृत विद्वान् पंडितों ने व्यवस्था देते समय लिखा है —

शौंडिक कलपाल (कलवार) जन्म से 'हैहय'-नाम के राजवंश से अलग न हुये हैं, यह बात मत्स्यपुराण और अग्निपुराण के वचनों के प्रमाणों से निश्चित हो चुकी है और इन लोगों का राज्य विन्ध्य पर्वत के पाछे, वीतिहोत्र और मेकलादि जन-।

पदों ( देशों ) से मिला हुआ था। जैसा कि महाभारत अनुशासन पर्व ३५।१७-१८ मत्स्यपुराण ११११४।५४ और गणरत्न महोदधि आदि ग्रन्थों से निर्धारित होता है। मूल में शौण्डिक शब्द का सुराजीवी अर्थ नहीं पाया जाता। पहले इस शब्द का अर्थ क्षत्रिय राजवंश समझा जाता था। कुछ समय के बाद जिस देश पर उनका राज्य था उसका नाम 'शौण्डिक' हो गया।"

"सुरा का व्यवसाय करना केवल ब्राह्मण के लिये निषिद्ध है।"

"इस वंश का नाम पहले जनपद ( देश ) अर्थ में था, समय पाकर एक विशेष अवस्था में परिणत हो गया। राज तरंगिणी में लिखा है कि कल्यपाल राजकार्य के अधिकारी थे। जैसे कि; "उत्पाख्यस्य,खुव ग्राम कल्यपालस्येत्यादि ६६७ )"

"कल्य का अर्थ है भोजन ( कलेऊ ) और उसमें नियुक्त रहने वाले राजपुरुष भोजनपाल हुए। अतः एक विशेष प्रकार का राज-अधिकार, यह ( कलवार शब्द का ) पहला अर्थ हुआ। और संभव है, आगे चलकर किसी प्रयोजन या कार्य से वे लोग भोजन का व्यवसाय ही करने लगे हों। क्षेमेन्द्रकृत लोक प्रकाश में भी लिखा है कि:—

"राजकुले सांयात्रिक कल्यपालाविति राजाधिकरणिकौ भोज्य संविधायकौ" अर्थात् "राजकुलों में सांयात्रिक कल्यपाल राजकार्य के अधिकारी भंडार * की व्यवस्था करने वाले थे।"

कलकत्ता के महामहोपाध्याय हरिप्रसाद शास्त्री एम० ए०, सी० आई० ई० ने लिखा है:—

"कल्य शब्द का अर्थ कलेवा अर्थात् प्रातःकाल का

---

*इस भंडार शब्द के कारण ही हैहय क्षत्रियों के एक समूह का नाम भंडारी है।

अन्नपान है। वल्यपाल का अर्थ प्रातःकाल राज्यघरों में भोजन देने वाले का होता है।"

"रायबहादुर श्री प० गौरीशंकर हीराचन्द्र जी ओझा ने लिखा है—

"प्राचीन काल में यादवों की हैहय शाखा की ४ उपशाखाएँ थीं। उनमें एक शौंडिक शाखा भी थी। यादवों का नाश मद्य से ही हुआ और वि० सं० की ७वीं शताब्दी के एक शिलालेख में एक विष्णु मंदिर के बनाए जाने का उल्लेख है जिसमें पूजन की व्यवस्था में प्रति शुक्ला १२ को मद्य के दो घड़ों का भी उल्लेख है। (वारुणयाश्चट्रिका द्वय)।"

अजमेर के श्रीधरणीधर शास्त्री ने लिखा—'अग्निपुराण २७५।१० ११ के श्लोकों से स्पष्ट हो जाता है कि हैहय की पाँच शाखाओं में से शौंडिकेय भी थे। महाभारत में भी इनका

मेकला द्रविडा लाटा पौण्ड्रा कोयव शिरास्तथा।
शौण्डिका दरदा दर्वाश्चौरा शबर बर्वरा।
किराता यवनाश्चैव तास्ता क्षत्रिय जातय ॥

अनु० प० ३५।१७ १८

क्षत्रिय लिखा है। वर्ण विवेक चन्द्रिका में जो लिखा है कि क्षत्रिय के वीर्य से वैश्य कुलोत्पन्न स्त्री से जो संतति हो वह कलवार कहलाती है।* इस प्रकार भी यदि मान लें तो अनुलोम विवाह से वर्ण संकरता दोष इनमें नहीं आ सकता।"

"बहुत से ग्रन्थों में शौंडिक शब्द का प्रयोग दिखाई देता है और प्राय सभी स्थलों में इसका प्रयोग विशारद या युद्ध कुशल

---

*यह अनैतिहासिक कल्पना है। इसमें कोई तत्व नहीं है। श्री जयचन्द्र विद्यालंकार के उद्धरण से इसे अप्रमाणित किया जा चुका है। —लेखक

अर्थों में आता है। इसके लिये गणरत्न के पृष्ठ २०४।३५ में लिखा है कि—

शुण्डिका कुचवारोऽथ सर्वसेन शकौ शकः
सर्व केशरहौ बोधश्चगकः शंख शंकरो ॥

अर्थात् शुण्डिका, कुच, वार, सर्वसेन, शठ, शक, सर्व केश, रह, बोध, चगक, शंख, और शंकर ये क्षत्रियों की जातियाँ थीं। और भी—

शुण्डिका ग्रामोभिजनोऽस्य शौण्डिक्यः इत्यादि। अर्थात् शुण्डिका ग्राम के निवासी शौण्डिक्य कहलाए। किन्तु पाणिनि शौण्डिक्य के स्थान में शांडिक्य मानते हैं। "सिन्धु शुण्डिकादि-भ्योऽण्ण्यौ" इस व्याकरण के सूत्र से ण्य प्रत्यय द्वारा इसकी सिद्धि होती है। इसी के प्रत्यय-भेद से प्रयोग "शौंडायना मार्जन कर्म शौंडाव्याडायना शाठ्य विहीन वाचः" शुद्धि कर्म में चतुर को शौंडायन और शाठ्य विहीन वक्ता को व्याडायन कहते हैं। तथा गणरत्न महोदधि में भी शौंड व्याडौ निपुण चपलौ पंडितान्तः प्रवीणः" अर्थात् शौंड का अर्थ निपुण और व्याड अर्थ चपल होता है। शौंड, शौंडीर्य, शौंडीरादि शब्द भी कुशल, विजयी, समर चतुरादि अर्थ में प्रयुक्त मिलते हैं।"*

ऋग्वेद ६।६३।९ कहता है:—

"उत म ऋज्रे पुरस्य रघ्वी सुमीढ्हे शतं पेरु के च पक्वा। शांडो दाद्धि रणिनः समद्दिष्टान्दश व शासो अभिशाच ऋष्वान ॥"

हे मेरे पुर या नगर के अध्यक्ष, धर्मयुक्त समृद्धि से उत्तम भरे पूरे कर्म में कुशल सैकड़ों प्रकार के तैयार वस्तुओं के स्वामी और ( शांडः )=प्रजा को शान्ति देने वाले, रण में शत्रुओं को जीतने में समर्थ पुरुष तथा धन के स्वामी तू बुद्धिमान सुयोग्य

*देखिये अलवर की सोमवंशी क्ष० सभा द्वारा प्रकाशित व्यवस्थापत्र

सब सहयोगी पुरुष की स्थापना कर जो तेरे अधीन हो कर कार्य करें।

उपरोक्त वेदमत्र में शाड शब्द प्रजा को शान्ति देने और रण में शत्रुओं को जीतने में समर्थ पुरुष के अर्थों में है। इसकी व्युत्पत्ति भी 'श' धातु से है। यथा

"श ददाति इति शाड । स्यति अन्त करोति वा शत्रूणा।"

गणरत्न महोदधि के 'शौंड' शब्द के भी यही भाव हैं, जैसा कि पुस्तक में स्थान विशेष पर इसका उल्लेख किया गया है। शौंड शब्द का निपुण अर्थ महर्षि पाणिनि ने भी सप्तमी शौंडे में स्वीकार किया है। पशुरनि के नशामक होने से इनको 'शुण्डा' (सुरा) बहुत प्रिय थी। "शौंडिरो युद्ध निपुण क्षत्रिय प्रोच्यते बुधै।" विद्वान् लोग युद्ध कुशल क्षत्रिय को शौंडिक कहते है।

यही स्थिति कीलाल की भी है। ऋग्वेद १०।११।१४ और यजु० २०।७८ के मत्र में आये हुये कीलाल की परिभाषा देखिये—

यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेषा ऽअवसृष्टास आहुता।
कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदामतिं जनय चारु मग्नये॥

(यस्मिन्) जिसके अधीन (अश्वास) अश्व के समान (ऋषभास) श्रेष्ठ, परोपकारी लोग (उक्षाण) युवा पुरुष (वशा) तेजस्वी पुरुष (मेषा) योद्धा लोग (आहुता) बुला बुलाकर (अवसृष्टास) नियत किये गये हैं, उस (कीलालपे) बल की रक्षा करने में समर्थ अथवा बलवान् लोग (सोम पृष्ठाय) आनन्द दायक स्थान को, राष्ट्र को, जनपद को, जिसका सरक्षण भार उन्होंने लिया है (वेधसे) बुद्धिमान् महापुरुष (अग्नये) अग्रणी पुरुष (हृदा) हृदय मे (चारुम्) श्रेष्ठ (मतिम्) मान या आदर (जनय) प्रकट करें।

अब आप देखिये 'शौंडिक' और 'कीलाल' शब्दों के भावार्थों में कितनी साम्यता है। यदि शौंडिक चतुर और निपुण हैं, प्रजा को शान्ति देनेवाले, रण में शत्रुओं को जीतने में समर्थ हैं तो कीलाल बल की रक्षा करने में समर्थ बलवान् लोग है। इस प्रकार शब्दों की यौगिक उत्पत्ति अर्थों में साम्यता रख कर रूढ़ि हुई।

कीलाल निश्चय ही एक पेय पदार्थ है। रणक्षेत्र में कीलाल का पान करना निर्धारित मात्रा में आवश्यक है। वह मनुष्य को ओजवान् और साहसी बनाता है। क्षत्रिय योद्धा 'कीलाल' का पान करते थे। तभी तो यजु० २०।६५ में कहा है:—

ऋतु थेन्द्रो वनस्पतिः शशमानः परिस्रुता।
कीलालमश्विभ्यां मधु दुहे धेनुः सरस्वती॥

अर्थात् ( ऋतुथा ) ऋतु आने पर जिस प्रकार ( इन्द्रः ) इन्द्र जल वृष्टि कर ( वनस्पतिः ) वृक्षों को ( शशमानः ) स्वाभाविक रीति से ( परिस्रुता ) सिंचित करते हैं, उसी प्रकार ( दुहे धेनुः ) गौ को दूहने से (मधु) दुध जैसा मधुर रस ( सरस्वती ) सरस्वती की उपासना से ज्ञान ( अश्विनः ) पृथ्वी की छान बीन से रत्न और ( कीलालम् ) अन्य तथा अन्न के सारभूत रस से, बल और ओज स्वभावतः प्राप्त होता है।

कीलालम्— कीलालममृतं पयः इति अमरः। कल गतौ चौरादिः। कील बन्धने खण्डने च भ्वादिः। कलयति कलपते वा तत् ज्ञानं कीलालम्। कीलयति बध्नाति खण्डयति बध्यते खण्ड्यते वा तत् कीलालम् प्रबन्धः, शत्रूच्छेदकं बलं, अन्नं वा। ॐ

"कीलालममृतंपयः" अमर कोष के अनुसार कीलाल शब्द अमृत (ज्ञान) और दुग्ध दोनों अर्थों का वाचक है। गत्यर्थक कल धातु चुरादिगण पठित है। गमन, ज्ञान, मोक्ष और प्राप्ति ये

ॐ देखिये यजु० संहिता भाषाभाष्य द्वितीय खं० पृ० १६० आर्य सा० मं० अजमेर।

चारों अर्थ गति के अर्थ में अन्तर्भूत माने जाते हैं । इसलिये मधुर दुग्ध के समान मनन करने और धारण करने योग्य, प्रगतिशील, सामर्थ्यसम्पन्न ज्ञान कीलाल शब्द का शाब्दिक अर्थ भी है। इसी प्रकार कालाल शब्द राजप्रबन्ध, शत्रुच्छेदक बल एव अन्न अर्थ भी रखता है। बन्धनार्थक तथा खण्डनार्थक कील धातु भ्वादिगण पठित है। कीलन अर्थात् एक सूत्र मे लोकसमुदाय को बाँधने वाला राजप्रबन्ध, खण्डन अर्थात् शत्रुओं का नाश करने वाला बल, भोजनोत्तर सामर्थ्यप्रदान द्वारा शत्रुनाशक अन्न ये सभी अर्थ भ्वादिस्थ कील धातु से सिद्ध कीलाल शब्द के योगार्थ हैं।

शब्दों की उत्पत्ति अनावश्यक रूप से नहीं होती। प्रत्येक शब्द अपने यौगिक अर्थो के साथ उत्पन्न होता है। 'कलाल' शब्द की सृष्टि जिस समय हुई, उस समय भारत में वैदिक संस्कृति के पुनरुद्धार का सच पूँछो तो ढोंग किया जा रहा था। प्रद्योत के बाद शुङ्ग, काण्व, सातवाहन और भारशिव जैसे प्रबल ब्राह्मण राज्य भारत में एक के बाद दूसरे चले। वैदिक संस्कृति के नाम पर जिस संस्कृति का विकास हुआ उसने भारतीय समाज के बीच ऊँच-नीच के भेद भाव पैदा किये। विजेता बनकर विजित जातियों को, विजित देशों और राजवंशों को उनके अपने स्थान से नीचे गिराया गया। उनका सर्वनाश किया जाने लगा—जो अवन्ति, मगध और कोशल में अपने उतार चढ़ाव के दिन देखते हुये चले आ रहे थे। श्री डा० काशीप्रसाद जायसवाल हिन्दू राज्यतंत्र खंड २ पृ०२९ ? पर लिखते हैं—

"लोगों में यह प्रश्न उत्पन्न होने लगा कि पुराने राजवंश को क्यों जीवित रहने दिया जाय ? दो स्थानों पर—एक तो अवन्ति में और दूसरे मगध में सब से पहले प्राचीन राजवंशों के अधिकार छीने गये। एक राजनीतिक विचारक ने इस सम्बन्ध का

एक सिद्धान्त ही बना डाला कि जो राजवंश दुर्बल और हीन हो गये हों, उनके राज्यों पर अधिकार कर लेना कर्त्तव्य है।*

महाभारत का:—

"वृषलत्वं गतालोके ब्राह्मणानां अदर्शनात् ।"

श्लोक इसी काल रचा गया और श्लोक में वर्णित जातियाँ व्रात्य बना दी गईं। इन व्रात्य क्षत्रिय जातियों में शौण्डिक भी शरीक किये गये। धार्मिक कट्टरता का अन्धयुग छा गया। सोम, सुरा, आसव, वारुणी, मधु, मैरेय, जिसे अबतक देवगण निरन्तर पान करते आये थे और जिसकी प्रशंसा में वैदिक सूक्त थकते नहीं थे। जिसे इन्द्र, वरुण, सुर (अन्य देवगण), शिव और यक्ष (कुबेर) सभी पान कर आह्लादित हो उठते थे। अब उस मादक वस्तु का एक और प्रकार बना और उसे मदिरा कहा जाने लगा।

'पाल' विशेषण युक्त उपाधियों की वर्षा इसी युग में आरम्भ हुई। जैसा कि आपको यजुर्वेद के ३०।११ के मंत्र से विदित होगा जो दुर्गपाल, राजपाल, अन्नपाल, गोपाल, नगरपाल, पोतपाल जैसे शब्द हैं। इन्हीं में कल्यपाल भी हैं। जो निश्चय ही मद्यविभाग और भोजनविभाग के छोटे से लेकर बड़े राज-

---

* श्री काशीप्रसाद जी फुटनोट में लिखते हैं:—"मिलाओ कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र ५-६.६५ पृ० २५३.५४ में भारद्वाज का उद्धरण जिसका कौटिल्य ने खंडन किया है। कौटिल्य ने कहा है कि यह प्रणाली नीति विरुद्ध है। इसमें वास्तव में केवल मंत्रियों का ही शासन होता है। और इसमें सबसे बड़ा भय प्रजा द्वारा दंडित होने का है। उपरोक्त भारद्वाज हृदय शून्य उग्र लेखक था। जो तत्-काल वर्तमान था।

कर्मचारी के लिये प्रयुक्त होता था।" समयान्तर में उनके जाति भाई अथवा वंश के लोग सभी इसी नाम से प्रसिद्ध होते रहे।

यह बात तो अक्षरशः सत्य है कि किसी वंश अथवा जाति को यदि संसार से मिटा देना है तो उसका इतिहास बिगाड़ दो "वृषलत्व गवालोवे" का प्रयोजन ही यही है। परन्तु "हैहय क्षत्रिय" जाति का जन्मगत स्वभाव और उसकी संघर्ष करने की शक्ति को "वृषलत्व" की दिशा में नहीं ढकेला जा सका। उसने अपने पौरुष और अपने बल का परिचय प्रत्येक युग और प्रत्येक शताब्दी में दिया और वर्तमान समय के विश्वव्यापी महायुद्ध में भी इस जाति के महान् वीरों का शौर्य रहा। ऐसी वीर जाति को "वर्णाधम" कहने वाला व्यक्ति देश समाज और भारत जननी का शत्रु और घोर शत्रु है।

भारत के प्राचीन राजवंश की भूमिका ( प्रथम भाग ) पृष्ठ १४ पर श्री देवी प्रसाद जी सरकारी अध्यक्ष, इतिहास कार्यालय जोधपुर लिखते हैं —

"मारवाड़ में कलालों की एक शाखा है, वह अपनी उत्पत्ति टाक जाति के राजपूतों से बताती है। इसी प्रकार गुजरात के बादशाह भी 'टाक गोत' के कलालों में से ही थे। इसी प्रकार नागोर के पुराने रईस खानजादे भी कलाल थे।

"अब तक एक भी ऐसी किताब नहीं मिली है जो कि हिन्दुस्तान के पुराने राजाओं के समय के राज्य प्रबन्ध का हाल बतावे। पर जब अकबर जो कि, दो पीढ़ी का ही तातार से आया हुआ था और जिसके राज्य का सब इन्तिजाम यहीं के हिन्दू मुसलमान विद्वानों के हाथ में था, अपने प्रबन्ध के लिये अच्छा गिना जाता है, तब फिर पीढ़ियों से जमे हुये विद्वान् राजाओं का प्रबन्ध तो क्यों नहीं अच्छा होगा। इसके उदाहरण

स्वरूप हम राजाधिराज कलचुरि कर्णदेव के एक दान पत्र से प्रकट होने वाली कुछ बातें लिखते हैं :—

"राज्य का काम कई भागों में बँटा हुआ था, जिनके बड़े बड़े अफसर थे। एक बड़ी राजसभा थी, जिसमें बैठ कर राजा, युवराज और सभासदों की सलाह से, काम किया करता था। इन सभासदों के ओहदे अकबर वगैरह मुग़ल बादशाहों के अरकान दौलत (राजमंत्रियों) से मिलते हुए ही थे—

१—महामन्त्री—(वकील-उल-सल्तानत)—प्रतिनिधि (गवर्नर)

२—महामात्य—वज़ीर-ए-आज़म (प्रधानमंत्री)

३—महासामन्त—सिपहसालार (प्रधान सेनापति)

४—महापुरोहित—सदर-उल-सिदूर (धर्माधिकारी)

५—महाप्रतीहार—मीर मंज़िल (पुलिस विभाग का प्रधान)

६—महाक्षपटलिक—मीर मुंशी (प्रधान लेखक)

७—महाप्रमात्र—मीर अदल

८—महाश्वसाधनिक—मीर आखुर

९—महाभाण्डागारिक—दीवान ख़ज़ाना (कोषाध्यक्ष)

१०—महाध्यक्ष—नाज़िरकुल।

इसी प्रकार हर एक शासन विभाग के लेखक (अहलकार) भी अलग अलग होते थे, जैसे धर्म-विभाग का लेखक—धर्मलेखी।

उसी ताम्रपत्र से यह भी जाना जाता है कि जो काम आजकल बन्दोबस्त का महकमा करता है वह उस समय भी होता था। गाँवों के चारों तरफ़ की हदें बँधी होती थीं। जहाँ कुदरती हद या पहाड़ वगैरह की नहीं होती थी वहाँ पर खाई खोदकर बना ली जाती थी। दफ़्तरों में हद बन्दी के प्रमाणस्वरूप बस्ती खेत, बाग, नदी, नाला, झील तालाब, पहाड़, जंगल, घास, आम महुआ, गढ़, गुफा वगैरह जो कुछ भी होता था उसका दाखला

रहता था, और तो क्या आने जाने के रास्ते भी दर्ज रहते थे। जब किसी गाँव का दानपत्र लिखा जाता था तब उसमें साफ तौर से खोल दिया जाता था कि किस किस चीज का अधिकार दान लेने वाले को होगा और किस किस का नहीं।

मन्दिर गोचर और पहले दान की हुई जमीन उसके अधि-कार से बाहर रहती थी।

कलचुरियों का राज्य, उनके शिलालेखों में, त्रिकलिंग अर्थात् कलिंग नाम के तीन देशों पर और उनके बाहर तक भी होना लिखा मिलता है। सभव है कि यह बढाकर लिखा गया हो। पर एक बात से यह सही जान पड़ता है, वह यह है कि इन्होंने अपने कुलगुरु पाशुपत पथ के महन्तों को तीन लाख गाँव दान दिये थे। यह सख्या साधारण नहीं है। परन्तु वे महन्त भी आजकल के महन्तों जैसे स्वार्थी नहीं थे, बल्कि गुणी साहित्य सेवी, उदार और परमार्थी थे। वे अपनी उस बड़ी भारी जागीर की आमदनी को लोकहित के कामों में लगाते थे। इन महन्तों में विश्वेश्वर शभु नामक महन्त, जो कि सवत् १३०० के आस पास विद्यमान् था बडा ही सज्जन, सुशील और धर्मात्मा था। इसने सब जातियों के लिए सदाव्रत खोल देने के सिवा दवाखाना, दाईखाना और महाविद्यालय का भी प्रबन्ध किया था। सगीतशाला और नृत्यशाला में नाच और गाना सिखाने के लिये काश्मीर देश से गवैये और कत्थक बुलवाये थे।

जब पुण्यार्थ दी हुई जागीर में ऐसा होता था तब कलचुरि राजा के अपने राज्य में तो और भी बडे बड़े लोकहित के काम होते होंगे। परन्तु उनका लिखा पूरा विवरण न मिलने से लाचारी है।

कलचुरियों के राज्य के साथ ही उनकी जाति भी जाती

रही। अब कहीं कोई उसका नाम लेने वाला नहीं सुना जाता है। हैहयवंश के कुछ लोग ज़रूर मध्यप्रदेश, संयुक्तप्रान्त और विहार मे पाये जाते हैं। हमको मुंशी माधव गोपाल से पता लगा है कि रतनपुर ( मध्यप्रदेश ) में हैहय वंशियों का राज्य उनके मूल पुरुष सिद्धनाम से चला आता था। पर यहाँ के ५६ वें राजा रघुनाथ सिंह को मरहठों ने रतनपुर से निकाल दिया। उसकी औलाद में रतन गोपाल सिंह इस समय उसी जिले में पाँच गाँवों के जागीरदार है। यह रतनपुर सिद्धिनाम के बेटे मोरध्वज ने बसाया था।

"संयुक्त प्रान्त में हल्दी राज्य (जिला बलिया) के राजा हैहय वंशी हैं।......

"ऐसे ही कुछ हैहयवंशी बिहार में भी सुने जाते हैं, जिनके पास कुछ ज़मींदारी* रह गई है।"

जिला होशियारपुर ( पंजाब ) में 'अम्ब स्टेट' के राजा लछमण सिंह ( जसवाल ), कांगड़ा में राजा बल्देव सिंह (गुलेर) हरिपुर स्टेट के स्वामी हैहयवंशी क्षत्रियो में से हैं।

ता० ७-४-१९५०    —चिन्तामणि

---

*बिहार में पूर्णिया जिले में नज़रगंज राज्य के स्वामी राजा पृथ्वीचन्द्र लाल और मुंगेर में राजा रघुनन्दन प्रसाद सिंह जी हैहय-वंशी क्षत्रियों में से है।

# त्रिपुरी का कलचुरि वंश

## त्रिपुरी का महत्व

त्रिपुरी भारतवर्ष के ठीक केन्द्र पर स्थित किसी जमाने में एक भारी नगरी थी। इसकी तुलना इन्द्र की राजधानी अमरावती से का जाती थी। अब लोग इसे 'तेवर' कहते हैं। मध्यप्रदेश के जबलपुर नगर से ८ मील दूर पश्चिम में 'तेवर' ग्राम आज भी स्थित है। तेवर से तीन मील दक्षिण नर्मदा के तट पर गोपाल-पुर घाट और छोटी मोटी बस्ती भी है। गोपालपुर इसी प्राचीन त्रिपुरी का एक भाग है। इसी गोपालपुर घाट के एक ओर त्रिशूलघाट, लमेटाघाट और दूसरी ओर भेड़ाघाट हैं। त्रिशूल-घाट के उस पार त्रिशूल भेद तीर्थ है। कहते हैं, यह तीर्थ भगवान् शङ्कर जी के त्रिशूल प्रहार से स्थापित हुआ है। यहाँ श्री नर्मदा जी की धारा पर्वत को विदीर्ण करके त्रिशूल के समान बहती हैं। दक्षिण तट पर इस घाट के समीप सिवनी ग्राम है।

गोपालपुर-घाट से लगभग तीन मील पर भेड़ाघाट है। कहते हैं प्राचीन काल में यहाँपर भृगु ऋषि तपस्या करते थे। भृगु ऋषि की तपस्या का स्थान आज भी विद्यमान है। श्री नर्मदा जी के उत्तर तट पर एक ओर से वामन गंगा नामक एक छोटी सी नदी का सगम (भेड़ा) हुआ है। इसीलिये लोग इसे भेड़ाघाट कहते हैं। संगम के पास ही कृष्ण जी का मंदिर ओर धर्मशाला है।

जबलपुर से भेड़ाघाट तक पक्की सड़क है, जिसकी दूरी लगभग तेरह मील है। वर्तमान समय में जो रेल की लाइन जबलपुर से बम्बई की ओर जाती है, उस पर मीरगंज नामक एक छोटा सा स्टेशन है। इस स्टेशन से भेड़ाघाट पक्की सड़क द्वारा लगभग तीन मील पड़ता है।

भेड़ाघाट से थोड़ी दूर श्री नर्मदा जी का वह सुन्दर जल-प्रपात है, जिसे धुँआधार कहते है। यहाँ श्री नर्मदा जी का जल बड़े वेग से ४० फीट नीचे गिरता है। जल के छोटे-छोटे कण आसपास उड़ते हैं, वे कण धुँआ के समान दिखाई देते हैं। अंग्रेज लोग इस जल-प्रपात को विक्टोरिया फाल के नाम से पुकारते थे। श्री नर्मदा जी का प्राचीन नाम 'रेवा' है। संस्कृत में रेवा का अर्थ उछलना या कूदना है। धुँआधार में श्री नर्मदा जी का यह नाम अक्षरशः सत्य दिखाई देता है। इस प्रपात का कल-कल शब्द बहुत दूर से सुनाई देता है। काली चट्टानों के बीच में से श्री नर्मदा जी का शुद्ध स्वच्छ जल नीचे गिरता हुआ बड़ा ही मनोहर प्रतीत होता है। बरसात के दिनों में यह जल स्पष्ट नहीं दिखाई देता।

धुँआधार के आगे लगभग दो मील तक श्री नर्मदा जी सफेद संगमरमर की एक सौ पाँच फीट ऊँची चट्टानों के बीच से बहती हैं। चाँदनी रात्रि में यह सफेद संगमरमर की पहाड़ियाँ कितनी मनोहर लगती हैं, जिसका वर्णन असंभव है। इसके पास ही एक स्थान पर नर्मदा जी के दोनों ओर स्थित पहाड़ियाँ इतने समीप आगई हैं कि बन्दर भी एक ओर से दूसरी ओर कूद सकता है, इसीलिये इस स्थान को बन्दरकूदनी भी कहते हैं। यह इतना सुन्दर स्थान है कि अनेक बार देखने पर भी इसे देखने की लालसा मन में बनी ही रहती है।

भेड़ाघाट में एक छोटी सी पहाड़ी पर श्री गौरीशंकर जी का

मन्दिर है। इसे चौंसठ योगिनी का मन्दिर भी कहते हैं। इस पहाड़ी के दोनों ओर श्री नर्मदा जी बहती हैं। रात्रि के समय मन्दिर मे बैठकर स्तब्धता में धुँआधार जल प्रपात का कल कल शब्द कर्णगोचर होता हुआ ऐसा समझ पड़ता है, मानो कोई वीणा बजाकर गा रहा है। मन्दिर में पहुचने के लिये नीचे से ऊपर तक सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। त्रिपुरी के कलचुरिवंशीय महाराजाधिराज, महान् दानी, त्रिकलिंगाधिपति काशिराज कर्णदेव की महारानी स्वनाम धन्या श्रीमती अल्हणादेवी ने इसे सन् १०५५ ५६ में बनवाया था। इस मन्दिर के गर्भगृह का नीचे का भाग ही आज कल मौजूद है। इसके आस पास चौंसठ योगिनियों का गोलाकार बाड़ा है। यह भी कलचुरिकालीन प्राचीन इमारत है। योगिनियों की मूर्तियाँ अब खण्डित दशा में हैं।

'तेवर' जिसके महत्व को यहाँ व्याख्या की जा रही है। वर्तमान समय में उसका क्षेत्रफल २७३२ एकड़ और १९१० में यहाँ पर मनुष्य सख्या ११७६ थी। नागपुर के भोंसला राजा ने तेवर व अन्य चार गाव एक महाराष्ट्र ब्राह्मण को जागीर में दिये थे। वही सन् १८२३ ई० में अंग्रेज सरकार ने राजभक्ति दिखलाने के कारण स्थिर रक्खा। वर्तमान मालिक नागपुर का शकरराव है। यहाँ एक प्रायमरी पाठशाला और एक डाकखाना है। प्रति इतवार को यहाँ बाजार लगता है। यहाँ बहुत से लढ़िये बसे हुये हैं। ये लोग पत्थर की मूर्तियाँ चक्कियाँ, प्याले, कूण्डी, कुवडे, आदि बनाते हैं। तेवर में अभी भी बीचगाँव में त्रिपुरेश्वर महादेव की मूर्ति विद्यमान है। यह स्थान बहुत प्राचीन है। यहाँ कुछ सिक्के मिले थे। ये सिक्के सन् ई० के ३०० वर्ष पूर्व के थे। ५वीं सदी के एक ताम्रलेख में भी त्रिपुरी का नाम आता है। उस समय परिव्राजक महाराजाओं का राज था। उसके बाद यह कलचुरि राजाओं के हाथ आया और उन महा-

राजाओं ने इसे अपनी राजधानी बनाया। उस ज़माने में इसका विस्तार जैसा कि हम ऊपर लिख चुके है, एक ओर नर्मदा और दूसरी ओर गोपालपुर नामक गाँव तक था। प्रयोजन यह कि त्रिपुरी राजधानी ३-४ मील तक फैली हुई थी। विश्व-विजयी महाराज कर्णदेव ने नर्मदा और त्रिपुरी के बीच एक नई बस्ती बसाकर उसका नाम कर्णावती रक्खा था, उसी को अब करन-वेल कहते है। उसी त्रिपुरी की आज जो दशा है, वह दुखद है। पक्के स्थान धरती में अब भी दबे पड़े हैं। एक मढ़िये की नीव खोदते समय कुछ पत्थर आदि मिले, साफ करने पर एक बड़ी सुन्दर बावली निकल आई। जहाँ तहाँ टूटी मूर्तियाँ अब भी गाँव के भीतर पड़ी हैं। जिनकी शिल्पकारी देखने योग्य है। यहाँ पर सड़क से लगा हुआ बालसागर नाम का एक बड़ा तालाब है, उसके बीच में एक महादेव का मन्दिर बना है। यहाँ भी प्राचीन मूर्तियाँ रख दी गई है। बहुतेरे ताम्रपत्र, शिलालेख अन्यत्र चले गये है। कोई कोई तो अमेरिका पहुँच गये हैं।

प्रसिद्ध वीर और भारत के महान् नेता श्री सुभाषचन्द्र बोस ने सन् १९३८ में अखिल भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस के ५१वें बृहद्-अधिवेशन का सभापतित्व रुग्णावस्था में होते हुये भी इसी स्थान पर किया था। 'तेवर' ग्राम एक बार फिर से उसी प्राचीन त्रिपुरी के दिव्य वैभव में परिणत हो गया था। उस काल उसने स्वतन्त्रता के दीवाने अपने उन भारतीय वीरो के हृदय मे उसी भावना का सचार किया था, जिस भावना का संचार उसने कितनी ही शताब्दियों पूर्व त्रिपुरी के उन कर्णधारों के अन्तः-करण में किया था, जिनकी हुंकार से चोल, पांड्य, मुरल, केरल, कीर, अंग वंग, कलिंग, सुह्म, पौण्ड्र सभी कांप उठे थे। गुर्जर हूण और कुञ्ज अपनी हेकड़ी भूल गये थे। तोते की तरह पिंजड़े बन्द और अपनी मन-हरण रटन से त्रिपुरी नरेशों के चित्त

को आह्लादित करते रहने का प्रयास करते थे। यही त्रिपुरी जिसके अंचल में प्राचीन काल में प्रसिद्ध पितृ लुप्त, वेद मंत्र स्रष्टा महर्षि सत्यकाम जाबाल का महान आश्रम था। जहाँ अगणित शिष्य महर्षि की मधुर ज्ञानमय वाणी श्रवणकर अपने लोक परलोक को स्वच्छ, सुन्दर बनाने की साधना करते थे। वही जाबाल आश्रम कालान्तर में जाबालपट्टन और आज जबलपुर के रूप में वर्तमान है। जिसके अंचल में उसी काल की भाँति आज भी रेवा (नर्मदा) अपनी उसी चचल प्रवृत्ति को धारण किये और उत्ताल तरंगों के साथ केलि विलास करती हुई बहती है।

यद्यपि यह ठीक है कि सड़कों के निर्माताओं ने अनुपम भव्य और ऐतिहासिक मूर्तियों और कुशल शिल्पियों की कृतियों को सड़क की गिट्टी बना डाला है। द्रामवे लगा कर गढे गढाये पत्थरों को ढो-ढो कर और उन्हें तोड फोड़कर पुलों में लगा दिये हैं, जो इस जिले के पुलों में लगे हुये अब भी मौजूद हैं। बिलहरी, उमरिया और मझगवाँ आदि स्थानों में ऐसी अनेक प्रेक्षणीय मूर्तियाँ मिली हैं। अनेक ध्वंशावशेष, शिलालेख, और ताम्र पत्र उस त्रिपुरी को गौरव गरिमा को ऊँची करने के लिये पर्याप्त हैं जिसकी तुलना इन्द्र की अमरावती से की जाती थी। यद्यपि त्रिपुरी की चमकती ख्याति के साथ बड़ा अपकार किया गया है। वैसा अपकार कदाचित् अन्यत्र न किया गया होगा।

त्रिपुरी चेदि देश की राजधानी थी। चेदि की चर्चा ऋग्वेद में भी है। एक ऋचा में यों लिखा है—'अश्विनी, मैं तुम्हें यह ज्ञान कराना चाहता हूँ कि हाल ही में मुझे कितना बहुत दान मिला है, उस चेदि पुत्र ने मुझे सौ ऊँट, दस हजार गायें और दस राजा मेरी सेवा के लिये दिये हैं। सब लोग उनके चरणों की वन्दना करते हैं। जो लोग उनकी स्तुति करते हैं, उनको चेदि

वंशज इतना दान देते हैं और उनका इतना उपकार करते हैं कि कोई अन्य धर्मात्मा नहीं कर सकता।"

यही क्यों, महाभारत का प्रसिद्ध योद्धा वसुषेण=(कर्ण); जिसने अपना अंग काट काट कर ब्राह्मण वेषधारी इन्द्र को कवच और कुण्डल दान कर दिया था, और जिसके कारण वह संसार में कर्ण के नाम से प्रसिद्ध हुआ था। जनता में 'करन दानी' के रूप में जो ख्याति विस्तृत हुई थी वह आज भी गाँव-गाँव और खेड़ों-खेड़ों में हरबोला या वसुदेवा भिक्षुकों द्वारा गाई जाती है, किन्तु 'करन-दानी' महाभारत के कर्ण तक ही सीमित नहीं रहा। कलचुरि (कलाल) कर्ण, 'दानी करन' से भी आगे बढ़ गया। जरा देखिये:—

राजा करण गड़ दानी भये कि हर गंगा।
सवा पहर मन सोनो देंय कि हर गंगा॥
सोन काट नरियर में देंय कि हर गंगा।
रानी करें खिचरहा दान कि हर गंगा॥
बेटा करें गौवों का दान कि हर गंगा।
बहू करें वस्तर का दान कि हर गंगा॥
कर कन्या मोतिन का दान कि हर गंगा।
धरम-धुजा द्वारे फहराय कि हर गंगा॥

दानी करन की प्रशंसा में हरबोलों द्वारा गाई जाने वाली उपर्युक्त पंक्तियाँ ही पर्याप्त नहीं है। इनके राज्य में सम्पन्नता और अमन-चैन का सजीव चित्र भी हरबोला या वसुदेवा भिक्षुकों के गीतों में आपको मिलेगा। कहते हैं, भगवान ने एक बार इनके दान की परीक्षा लेनी चाही और तपस्वी का रूप धर कर कर्ण की नगरी कर्णावती में पधारे। परन्तु ६ महीने तक भी ढूंढ़ते रहने पर उन्हें पता न चला कि कौन राजा है और

कौन मजा। तब एक बालक को मिठाई दे कर पूँछा कि करन, कहाँ रहते हैं ? बालक ने कहा—

कौन करन का पूँछो नब कि हर गगा।
एक करन मोदी का नाव कि हर गगा॥
दूजे करन पण्डित का नांव कि हर गगा।
तीजे करन कलवारों नांव कि हर गगा॥
और करन राजन का नांव कि हर गगा।

तब तपस्वी बोला—हमें 'दानी करन' । 'चेदि करन' ।। का महल दिखा दो। हम 'कलचुरी करन' से मिलना चाहते हैं। तपस्वी करन के महल पर ले जाकर खड़ा कर दिया गया। राजा ने पूँछा—क्या दान लोगे। उसने कहा, मैं धन धान्य कुछ नहीं चाहता—तुम्हारे बालक का मांस चाहता हूँ। करन ने बालक को लाकर खड़ा कर दिया। तब तपस्वी बोला—'इसके नव खण्ड करो, रानी उसे पकावे, तब मैं भोजन कर तृप्त हो जाऊँगा।' वैसा ही हुआ। थाली परोस कर तपस्वी के सामने रक्खी गई। तपस्वी ने कहा—'पहला कौर राजा उठावे। उसके बाद मैं भोजन करूँगा।' राजा ने जब तपस्वी के कहे अनुसार कौर उठाया तो उसने हाथ पकड़ लिया और प्रसन्न हो कर राजा से बोला—'वरदान मांगो।' राजा ने कहा—'बालक को जीवित कर दो।' तपस्वी ने कहा—'नाम ले कर पुकारो।' हरबोला कहता है, तब—

बिता बिता कर टेरे गये कि हर गगा।
तब पिता पिता कर मिलगे आय कि हर गगा॥

हरबोले के इन गीत में और उसकी भावुकता में छल रहित श्रेष्ठतापूर्ण दान का कैसा सजीव चित्रण है, जो त्रिपुरी के चेदियों की गौरव गरिमा को ऊँचा उठाये हुये है तब क्यों न चेदियों की प्रशंसा में वेद मुँह खोलें। चेदि देश डाहल मडल के

नाम से भी प्रसिद्ध था। इसीलिये कलचुरी वर्ग जहाँ काशी का राजा था, वहाँ वह डाहल देश का भी नरेश था। उसने अपने बाहुबल से अनेक देश जीते थे। वह त्रैकूटक भी कहलाता था। विन्ध्य पर्वत से दूर सातपुड़ा पर्वत तक त्रैकूटकों का राज्य फैला हुआ था। प्राचीन लेखों में यद्यपि डाहल की स्थिति विन्ध्य मेखला तक ही सीमित है:—

अस्ति विश्वम्भरा सारः कमला कुल मंन्दिरं।
भागीरथी नर्म्मदयोर्मध्ये डहल मण्डलं॥

अर्थात् गंगा और नर्मदा के बीच का प्रान्त डाहल मण्डल था। जो समस्त पृथ्वी का सार था, इसी को चेदि भी कहते थे। चेदि विन्ध्य तक ही सीमित था; किन्तु चेदि राज्य ने अनेक देशों को अनेकों बार जीतकर चक्रवर्ती का पद प्राप्त किया था, जैसा कि आपको कलचुरियों की वंश परम्परा में देखने को मिलेगा। चेदि की प्रशंसा में नीचे एक और पद्य देखिये:—

जय जय चेदी राज्य जय,
जय जय डाहल देश।
विश्व विजयि जहँ के भये,
जगत् प्रसिद्ध नरेश।
जहँ कलचुरि यश चन्द्रिका,
युगन युगन रहि छाय।
ओंकार अरु लक्ष्मी,
जहाँ वास किय आय।
झनत्कार ऊँकार की,
कहुरौ नमः शिवाय।
गूंज चतुर्दिक देत रह,
आकाशहि झन्नाय।
नीति निपुण नृप धर्मरत,

दानो करन समान।
तीन लाख जिन कर दियो,
ब्राह्मन को गुरु दान ॥

ऐसे थे चेदि के कलचुरी और त्रिपुरी के दानी वीर नरेश, जिन्होंने अपने गुरुओं को तीन लाख आय के गाँवों का दान किया था। कवि शिरोमणि राजेश्वर को विद्धशाल भञ्जिका में लिखा है —

"कलचुरी तिलको वत्स ते चक्रवर्ती"।

# कलचुरि कौन थे

त्रिपुरी के कलचुरि कौन थे? कहाँ से आये थे? इस प्रश्न को आज पुरात्तववेत्ताओं ने हल कर दिया है। यह वंश बड़ा प्राचीन वंश है। इनकी राजधानी आदि में त्रितसौर्य में थी। यह त्रितसौर्य किस स्थान पर था, इसका निश्चित पता भले ही अभी नहीं लग सका है। किन्तु कलचुरि थे बड़े प्रतापी राजा। इन्होंने अपना संवत् गुप्तों के पहले ही सन् ई० २४८ में चलाया था जो कलचुरि संवत् के नाम से प्रसिद्ध था। परन्तु इस संवत् के चलाने वाले राजा के नाम का कुछ ठीक पता नहीं चलता। इस सवत् का आरम्भ वि० संवत् ३०६ आश्विन शुक्ल १ से हुआ था और १४वीं शताब्दी के अन्त तक वह बराबर चलता रहा। इस संवत् का प्रयोग त्रैकूटकों के अतिरिक्त गुजरात (लाट) के चौलुक्य, गुर्जर, सेन्द्रक आदिवंश के राजाओं के ताम्रपत्रों में भी मिलता है।

कलचुरियों की शाखा किस समय बनी और ये लोग त्रिपुरी में कब आये, इसका कुछ शृङ्खलाबद्ध इतिहास नहीं मिलता। परन्तु त्रिपुरी में जो सिक्के मिले हैं उनमें से कोई कोई सन् ईस्वी के पूर्व के हैं। कलचुरियों के कोई चालीस-पचास शिलालेख और ताम्रलेख मिले हैं, जिनमें दी हुई वंशावली बहुधा कोकल्लदेव के समय से आरम्भ होती है। प्रायः सभी में मूल पुरुष हैहय वंशीय सम्राट कार्तवीर्य अर्जुन का नाम अवश्य आता है। कोकल्लदेव का समय प्रायः ८७५ ईसवी के आस-पास स्थिर किया गया है। सन् २४८ ई० और ८७५ ई० के बीच के कलचुरि राजाओं के दो चार नाम ही उपलब्ध होते हैं। परन्तु

कोकल्लदेव के आगे निदान बारहवीं शताब्दी के अन्त तक वंशावली बराबर मिलता है। इसी ऐतिहासिक काल के मध्य में कलचुरियों ने ऐसा जोर जमाया कि वे भारत के सम्राट् हो गये।

कलचुरि लोग दहरिया और त्रैकूटक इन दोनों ही उपाधियों को धारण करते थे। इतिहास और पुरातत्व के प्रसिद्ध विद्वान् श्रीमान डा० काशीप्रसाद जायसवाल अपने अंधकार युगीन भारत के पृष्ठ २१६ और २२० पर लिखते हैं कि —

"सन् ४५५ ई० के लगभग नरेन्द्रसेन ( वाकाटक ) का समय बहुत ही अधिक विपत्ति में बीता था। वह समय स्वयं उसके लिये भी कष्टप्रद था और उसके मामा गुप्त सम्राट् कुमारगुप्त के लिये भी। शक्तिशाली पुष्यमित्र प्रजातंत्रों ने, जिनके साथ पटुमित्रों और पद्ममित्रों के प्रजातंत्र भी सम्मिलित थे। गुप्त साम्राज्य पर आक्रमण किया था। पहले उक्त तीनों प्रजातंत्र वाकाटकों के अधीन थे और मांधाता के पास कहीं पश्चिमी मालवा में थे। ठीक उसी समय एक और नई विपत्ति उठ खड़ी हुई थी, और जान पड़ता है कि इस नई विपत्ति का सम्बन्ध भी उसी विद्रोह वाले आन्दोलन और स्वतंत्रता प्राप्त करने के साथ था। यह प्रयत्न त्रैकूटकों की ओर से हुआ था। और यह एक नया वंश था जो इस नाम से दहसेन ने स्थापित किया था। यह दहसेन त्रैकूटक अपरान्त ( त्रिकूट )* का रहने वाला था जो पश्चिम में खानदेश की ताप्ती नदी और बम्बई से ऊपर वाले समुद्र के बीच था। अपने पुराने स्वामी या सम्राट् वाकाटकों की तरह दहसेन ने भी अपने वंश का नाम अपने निवास स्थान के नाम पर 'त्रैकूटक' रक्खा था, और यद्यपि उसका पिता एक सामान्य व्यक्ति था

* हो सकता है यह त्रिकूट ही किसी समय त्रिपुरी रहा हो।

मंगलीश ( वि० सं० ६४८—६६६ ) के वृत्तांत में लिखा है कि उसने अपनी तलवार की शक्ति से युद्ध में कलचुरियों की लक्ष्मी छीन ली। यद्यपि इस लेख मे कलचुरि राजा का नाम नहीं है, परन्तु महाकूट के स्तम्भ पर के लेख में उसका नाम बुद्ध और नरूर के ताम्रपत्र में उसके पिता का नाम शंकरगण* लिखा है। सखेड़ा ( गुजरात ) के शासनपत्र में जो पल्लपति ( भील ) निरहुल्ल के सेनापति शांतिल का दिया हुआ है, शंकरगण के पिता का नाम कृष्णराज मिलता है।

बुद्धराज और शंकरगण चेदि के राजा थे, इनकी राजधानी जबलपुर के समीप तेवर ( त्रिपुरी ) थी; और गुजरात का पूर्वी भाग भी इनके ही अधीन था। अतएव संखेड़ा के ताम्रपत्र का शंकरगण, चेदि का राजा शंकरगण ही था। ( भारत के प्राचीन राजवंश पृ० ३८ )

भारत के प्राचीन राजवंश पृष्ठ ३९ पर लिखा है कि—"चौलुक्य विनयादित्य ने दूसरे कई राजवंशियों के साथ साथ हैहयों को भी अपने अधीन किया था। और चौलुक्य विक्रमादित्य ने ( वि० स० ७५३ सं० ७६० ) हैहयवंशी राजा की दो बहिनों से विवाह किया था ; जिनमे बड़ी का नाम लोकमहादेवी और छोटी का त्रैलोक्य महादेवी था जिससे कीर्तिवर्मा (दूसरे) ने जन्म लिया।

"उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि वि० सं० ५५० से ७९० के बीच, हैहयो का राज्य, चौलुक्य राज्य के उत्तर में अर्थात् चेदी और गुजरात ( लाट ) में था; परन्तु इस समय का शृङ्खलाबद्ध इतिहास नहीं मिलता। केवल तीन नाम कृष्णराज,

---

*दहसेन ने अपने सिक्कों पर अपना नाम 'दह-गण' दिया है। —अंधकार युगीन भारत पृ० २४७ के फुटनोट की अंतिम पंक्ति।

शंकरगण और बुद्धराज मिलते हैं, जिनमें से अन्तिम राजा, चौलुक्य मंगलीश का समकालीन था। इसलिये उसका वि० ६४८ से ६६६ के बीच विद्यमान होना स्थिर होता है। यद्यपि हैहयों के राज्य का वि० स० ५५० के पूर्व का कुछ पता नहीं चलता, परन्तु ३०६ में उनका स्वतन्त्र सम्वत् चलाना सिद्ध करता है कि, उस समय उनका राज्य अवश्य विशेष उन्नति पर था।

रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा अपनी "प्राचीन मुद्रा" नामक पुस्तक में लिखते हैं—"स्कन्दगुप्त की मृत्यु के उपरान्त गुजरात पर वलभी के मैत्रकवंशी राजाओं का और सौराष्ट्र पर त्रैकूटक राजाओं का अधिकार हुआ था। मैत्रकवंशी राजा लोग गुप्त राजाओं के सिक्कों के ढंग पर अपने सिक्के बनवाते थे। उनपर एक ओर राजा की मूर्ति और दूसरी ओर एक त्रिशूल है। उनपर जो कुछ लिखा है, वह अभी तक पढ़ा नहीं गया। त्रैकूटक वंश के दहसेन और व्याघ्रसेन नामक दो राजाओं के सिक्के मिले हैं। दहसेन के सिक्कों पर एक ओर राजा का मस्तक और दूसरी ओर चैत्य, तारका और ब्राह्मी अक्षरों में 'महाराजेन्द्रदत्तपुत्रपरमवैष्णवश्रीमहाराजदहसेन" लिखा है। सुराट के पास पर्दी नामक स्थान में एक ताम्रलेख मिला है। उससे पता चलता है कि दहसेन ने अश्वमेध यज्ञ किया था और त्रैकूटक सवत् २०७ (कलचुरि, चेदि संवत्=ईसवी सन् ४५६) में एक ब्राह्मण को एक गाँव दान दिया था। दहसेन के लड़के का नाम व्याघ्रसेन था। व्याघ्रसेन के चाँदी के सिक्के उसके पिता दहसेन के सिक्कों की तरह हैं। उनपर दूसरी "ओर "महाराजदहसेनपुत्रपरमवैष्णवश्रीमहाराजव्याघ्रसेन" लिखा मिलता है। शक राजाओं के सिक्कों के ढंग पर बने हुए भीमसेन और कृष्णराज नामक दो राजाओं के सिक्के मिलते हैं। भीमसेन का एक शिलालेख मिला है, परन्तु उसका समय अथवा वंश परिचय

अभी तक निश्चित नहीं हुआ। पहले मुद्रातत्त्व के ज्ञाताओं का अनुमान था कि यह कृष्णराज राष्ट्रकूट वंशी द्वितीय कृष्णराज था; परन्तु रैप्सन ने इस बात को नहीं माना है। कृष्णराज के नाम के सिक्के बंबई के नासिक जिले में मिलते हैं।"

उपरोक्त उद्धरण से यह स्पष्ट हुआ कि महाराज दल्लसेन महाराज इन्द्रदत्त का पुत्र था। जो सामान्य व्यक्ति नहीं, कहीं का राजा था, और वह स्थान त्रिकूट ही हो सकता है। भीमसेन जिसकी चर्चा श्री ओझाजी ने की है और जो ऊपर उद्धृत है; श्री काशीप्रसाद जी जायसवाल उसे कौशाम्बी का शासक और प्रवरसेन (वाकाटक) प्रथम का पुत्र मानते हैं। ( अ० यु० भा० पृ० २१२ ) सन ई० २४८ वाले संवत् के सम्बन्ध में विवेचन करते हुये, वे जिस परिणाम पर पहुँचे हैं वह यह है कि प्रवरसेन प्रथम के समय में उन्हें चेदि देश में यह संवत् प्रचलित मिला है। वे लिखते हैं कि—"दो बातें ऐसी हैं जिनसे सिद्ध होता है कि सन् २४८ ई० वाला संवत् वाकाटक संवत् था।........इस सम्बन्ध में ध्यान रखने की दूसरी बात यह है कि प्रवरसेन प्रथम ही सम्राट् हुआ था और उससे पहले के सम्राटों अर्थात् कुशन सम्राटों का एक स्वतंत्र संवत् था। उन दिनों एक नए साम्राज्य की स्थापना का एक मुख्य लक्षण यह भी हो गया था कि एक नया सवत् चलाया जाय। समुद्रगुप्त ने भी ऐसा ही किया था।........ इसलिए सन २४८-४९ वाले संवत् को, जिसका आरम्भ ५ सितम्बर सन् २४८ ई० को हुआ, हम चेदि का वाकाटक सवत् कहेंगे।" ( अ० यु० भा० २४०-२४१ )

श्री काशीप्रसाद जी की उपरोक्त पंक्तियाँ यह बताती हैं कि २४८ ई० वाले सवत् को जो स्पष्टतया कलचुरि संवत् है, और जिसका व्यवहार कलचुरियों अथवा त्रैकूटकों ने अनेक वर्षों तक लगातार किया था उसे वे चेदि देश में प्रचलित वाकाटकों

का संवत् मानते हैं जिसकी स्थापना वाकाटकों के सर्वप्रथम नरेश ने की थी, जिसका नाम 'विन्ध्यशक्ति' था और जो भारशिवों का महासामन्त था। उनका जो तर्क है, उससे हम सन्तुष्ट हैं, इसलिये कि वह हमारे विचारों को प्रश्रय देता है। चेदि के कलचुरि अथवा त्रिकूट के त्रैकूटक जो अनेक शताब्दियों से अधीनस्थ और करद राजा के रूप में रहते आये थे और जिन्होंने अनेक शताब्दियों से अपने वंश का छोटा मोटा उत्थान और भयंकर पतन देखा था। निश्चय ही गुप्तों और वाकाटकों का उत्थान होने के पूर्व ही उन्होंने अपने गर्दन पर रक्खे हुए उस जुये को उतार फेंकने का निश्चय किया होगा। प्रभुत्व के विरुद्ध विद्रोह करके स्वतंत्रता प्राप्त करते हुये उन्होंने अपने सिक्कों का निर्माण करने के साथ साथ अपने निजी संवत् की भी स्थापना की थी, और यह बात जहाँ साम्राज्य की स्थापना के एक मुख्य लक्षण के रूप में घटित होती है, वहाँ प्रभुत्व के विरुद्ध विद्रोह करके अपने शक्ति बल के सहारे प्रभुत्व से मुक्त होने और स्वतंत्रता प्राप्त करने के महान प्रयत्न का सजीव प्रमाण है। इस तरह हम देखते हैं कि महाराज इन्द्रदत्त का पुत्र महाराज दहरसेन और उसका पुत्र व्याघ्रसेन दोनों ही इस चेष्टा की वेदी पर भेंट हुये हैं। हो सकता है कि वाकाटकों के उत्थान ने संवत् का सृजन किया हो, और त्रैकूटकों की क्रान्ति दब गई हो, जैसा कि उद्धरण से स्पष्ट है, पर यह क्रान्ति जो कई पीढ़ियों से चली आ रही थी, दबाई नहीं जा सकी। कोकल्लदेव के समय में उसने अपनी प्रखर ज्योति को फैलाकर संसार को चकित कर दिया और जिसे श्री काशीप्रसाद जी चेदि का वाकाटक संवत् मानते हैं उसे चेदि के कलचुरि संवत् का वास्तविक गौरव प्राप्त हुआ।

"विजय राघवगढ़ के निकट उचहरा में त्रैकूटकों के मारण्ड तक रहते थे। ये लोग उच्चकल्प के महाराजा कहे जाते थे।

उनके लेख कारीतलाई आदि स्थानों में मिले हैं। इनकी तिथि सन् ४७५ और ५५४ ई० के बीचोबीच पड़ती है। इन लोगों का राज्य विशेषकर बघेलखण्ड की ओर था। इनके दान किये हुये ग्रामों से यह भी पता चलता है कि जबलपुर जिले के ईशानकोण में भी इन लोगो का अधिकार फैला हुआ था।' ( जबलपुर ज्योति पृ० १५ )

श्री काशीप्रसाद जी जायसवाल अन्धकार युगीन भारत पृ० २४१ के फुटनोट में लिखते हैं कि—"उच्चकल्प के महाराज जयनाथ के वर्ष ( जो उनके शिलालेख में प्राप्त हुये हैं ) यदि सन् २४८ ई० वाले संवत् के मान लिए जायें तो उनके कारी-तलाई वाले ताम्रलेख, जिन पर संवत् १७४ दिया है, सन् ४२२ ई० के ठहरते हैं। यदि हम बीच में ४५ वर्ष या इसके लगभग का अन्तर मान लें तो जयनाथ का पिता व्याघ्र पृथ्वीषेण प्रथम के समय में नवयुवक रहा होगा। उसने अपने राजा की राजधानी में अवश्य कुछ दान-पुण्य किया होगा। इस दशा में यह वही व्याघ्रदेव हो सकता है, जिसके तीन शिलालेख गंज और नचना में मिले हैं। पर हाँ, इस समय जो सामग्री उपलब्ध है, केवल उसी के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि ये दोनों व्यक्ति एक ही थे। पर यदि वे दोनों एक ही हों तो फिर जयनाथ के दिये हुये वर्ष सन २४८ ई० वाले संवत् के हो होने चाहिये।"

उपरोक्त उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि व्हरसेन के पुत्र महाराज व्याघ्रसेन ने वाकाटकों के विरुद्ध जब विद्रोह कर के स्वतंत्रता प्राप्त की थी और अपने राज्य का विस्तार करते हुये अपने सिक्के चलाये थे, उस समय उसने निश्चय ही अपने राज्य के दूसरे भाग का अधीश्वर अपने पुत्र जयनाथ को नियत किया होगा। ये दोनो ही उच्चकल्प के महाराजा थे। जिनके अनेक

शिलालेख प्राप्त हुये हैं। प्रसिद्ध पुरातत्वज्ञ स्व० रायबहादुर डा० हीरालाल जयनाथ को व्याघ्रसेन का पुत्र मानते हैं।

गुप्तों ने अपना सम्वत् ३२० ई० में स्थापित किया था। इनके भी अनेक माण्डलिक थे। जिनमें से परिव्राजक भी एक थे। जो जबलपुर के उत्तरीय भाग में स्थित थे। जिनका समय समुद्रगुप्त के दिग्विजय के अत्यन्त निकट पड़ता है। इनके लेखों में सबसे पुरानी तिथि सन् ४७५ ई० का है। इस समय जबलपुर का माण्डलिक हस्तिन् था। इसके पूर्व उसके पिता दामोदर, पितामह प्रभञ्जन, और प्रपितामह देवाढ्य राज्य भोग चुके थे। हस्तिन् के सम्वत् से जान पड़ता है कि राज्य काल का आरम्भ लगभग सन ४०० ई० के हुआ होगा। समुद्रगुप्त ने दक्षिण की विजय सन ३५० ई० के लगभग की थी। देवाढ्य ने अपने को सुशर्मन का वंशज लिखा है। जो चौदह विद्या में प्रवीण कपिल महर्षि का साक्षात् अवतार कहता था। इससे इस वंश का परिव्राजक नाम बहुत ही योग्य जान पड़ता है।

महाराज हस्तिन् का पुत्र सक्षोभ था। उसके समय के भी ताम्रपत्र मिले हैं। एक में मिति सन ५१८ ई० की है। इसमें बिलहरी के निकट कुछ गाँवों का उल्लेख है। दूसरे की मिति सन ५२८ ई० है। इसके पश्चात् इस वंश का पता नहीं लगता, न यह जान पड़ता है कि इनके हाथ से राज्य किसको चला गया।

पाँचवीं शताब्दी के आरम्भ में मध्य एशिया के हूणों ने भारत पर चढ़ाई की। अनेक घोर संग्राम हुये। उन्होंने गुप्त साम्राज्य का विध्वंस कर दिया। वे सागर जिले तक घुस आये। त्रिकूटकों का राज्य भी सम्भवतः इसी समय समाप्त हो गया, क्योंकि इसके पश्चात् फिर उनका कोई उल्लेख नहीं मिलता। सन ४८० ई० का बुद्धराज का एक ताम्रपत्र मिला है, जो निश्चय ही त्रैकूटकों का वंशज और कलचुरियों का पूर्वज था।

इसका पुत्र कृष्णराज और पौत्र शंकरगण था। हूणराज तोरमाण का स्थापित राज्य भी जान पड़ता है शीघ्र ही क्षीण हो गया, क्योंकि हम देखते हैं कि मध्यभारत के यशोधर्मन राजा ने शक्ति संचित कर और मगधराज से मैत्री स्थापित कर हूणराज की शक्ति को गहरा आघात पहुँचाया। यशोधर्मन का साम्राज्य हिमालय से लेकर त्रावणकोर के महेन्द्रगिरि पर्वत तक फैल गया और छठवी शताब्दी में ही इसका अन्त भी हो गया।

सातवीं शताब्दी में थानेश्वर के राजा हर्षवर्द्धन ने अपने साम्राज्य का विस्तार किया। वह सन ६४६ ई० में मर गया। उसके सन्तान न थी। इसलिये उसके मरते ही राज्य में अराजकता फैल गई जिससे जहाँ बना वहाँ का राजा बन बैठा। इस गड़बड़ में जबलपुर जिले में कौन राजा हुआ यह तो ठीक पता नहीं चलता, परन्तु सम्भवतः त्रैकूटकों ने आकर इसी बीच में त्रिपुरी (वर्तमान तेवर) पर अपना अधिकार जमा लिया। त्रैकूटक कलचुरि के नाम से भी प्रसिद्ध थे। यह हैहय-वंशावतंश थे, प्राचीन काल में यह हैहय वंश बड़ा प्रतिष्ठित रहा है। इनका विस्तृत साम्राज्य सात द्वीपों पर स्थित था।

———

# कलचुरि नरेश

श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य एम० ए०, एल एल बी० आनरेरी सदस्य बम्बई युनिवर्सिटी अपने "हिन्दू भारत का उत्कर्ष" भाग दो के पृष्ठ २१२ के आठवें प्रकरण में चेदि के कलचुरियों के सम्बन्ध में लिखते हैं —

"क्षत्रिय वंश वृक्ष की हैहय नामक शाखा बहुत प्राचीन समय से प्रसिद्ध है। इस शाखा की उत्पत्ति सहस्रार्जुन से हुई है। पुराणों में लिखा है कि सहस्रार्जुन ने रावण को हराया था। प्राचीन समय से हैहय वंश के लोग नर्मदा तटवर्ती स्थानों में रहते आये हैं। पुराणेतिहास से यह भी पता चलता है कि हैहयों ने अयोध्या के सूर्यवंशी राजा सगर का पराभव किया था। फिर थोड़े ही दिनों में हैहयों ने दक्षिण कोसल अर्थात् छत्तीसगढ पर अधिकार कर लिया। नागपुर के भोंसलों के समय तक यह प्रान्त इनके ही आधीन था। प्रथम भाग में मध्य प्रान्त के इन हैहयों का कुछ परिचय दिया गया है और साथ ही चेदि की कलचुरि शाखा के इतिहास की भी रूप रेखा बताई गई है। कलचुरि घराना हैहयवंश की भी एक शाखा है, इसमें कोई मतभेद नहीं है। पर इसका प्रादुर्भाव कब और कैसे हुआ, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। साथ ही यह बताना भी कठिन है कि कलचुरियों ने त्रिपुर ( वर्तमान जबलपुर ) में कब और क्या स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की। कलचुरि लोग विक्रम अथवा शालिवाहन शक न मानकर अपना स्वतन्त्र चेदि शक मानते हैं। चेदि शक का आरम्भ ई० सन् २४८ से हुआ है। ईसा की चौदहवीं सदी के अन्त ( वि० १४५७ ) तक के कल-

चुरियों के इतिहास और दानपत्रों में चेदि शक पाया जाता है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि कलचुरियों का घराना बहुत प्राचीन समय से विख्यात था। चेदि शक पश्चिम भारत अर्थात् गुजरात और कोकण प्रान्त में भी प्रचलित था। इससे जान पड़ता है कि दक्षिण के चालुक्यों के उदय से भी पूर्व पश्चिम प्रान्त में कलचुरियों का राज्य था। सातवाहन के पश्चात् आन्ध्र साम्राज्य का अधिकांश उनकी अधीनता में अवश्य ही आ गया था। कालिंजर का दृढ़ क़िला प्राचीन समय से उनकी आधीनता में था ही। धीरे-धीरे पूर्वीय प्रान्त में उन्होंने प्रवेश किया और अन्त में यमुना तट के प्रदेश पर अधिकार कर लिया। "चेदि" इस अन्वर्थक नाम से भी यही बात सिद्ध होती है।

विभिन्न प्रान्तों में कलचुरियों का क्रमशः किस प्रकार प्रवेश हुआ, उसका यह संक्षिप्त वर्णन है। परन्तु ईसा की नवीं शताब्दी (वि० ८५८-९५७) के उत्तरार्ध से पहले कलचुरियों की गणना स्वतंत्र राजाओं में नहीं होती थी। कलचुरियों का स्वतंत्र राज्य ईसा की नवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में स्थापित हुआ। इस वंश का कलचुरि नाम क्यों पड़ा, यह कहना कठिन है। इतिहास-प्रसिद्ध कुलों अथवा वंशों की उत्पत्ति अनेक प्रकार से बताई जाती है, किन्तु उन बातों में तथ्यांश बहुत ही अल्प होता है। इस कुल के सम्बन्ध में भी यही बात है। यह कोई नियम नहीं है कि सब नाम सार्थक ही हों। प्रायः कविगण नाम पर चमत्कृति-जनक श्लेषरचना करते हैं। पर वास्तव में इस प्रकार नामोत्पत्ति के सम्बन्ध में गढ़ी हुई रचना काल्पनिक ही हुआ करती है, और वही आगे चल कर सच्ची जान पड़ती है। नाम के सम्बन्ध में रची हुई श्लेषपूर्ण कथाएँ प्राचीन काल से प्रचलित हैं। ऋग्वेद में भी ऐसी श्लेषजन्य कथाएँ वर्णित हैं। परन्तु पहले कहे अनुसार उनमें तथ्यांश बहुत ही कम होता है।

सारांश, किसी कुल के नाम की अन्वर्थकता का विचार करना बड़े परिश्रम का काम है और परिश्रम किया भी जाय, तो उससे सत्यांश ज्ञात होने की कोई आशा नहीं। अत नामों की व्युत्पत्ति के फेर मे न पड़ना ही उचित है।" "कलचुरिवंश संबंधी—दो प्रधान लेख उपलब्ध हुए हैं और वे कीलहार्न साहब ने एपिग्राफिका इंडिका भाग १ पृ० २६५ और भाग २ पृ० ३०५ में प्रकाशित किये हैं। उनके नाम हैं "बिलहारी शिलालेख" और "बनारस ताम्रपटलेख"। इन लेखों से ज्ञात होता है कि कलचुरि वंश में सन् ८५० ( वि० ९०७ ) के लगभग कोक्कल नामक एक विख्यात वीर पुरुष हुआ था। कोकल्ल और उसके वंशजों का वृत्तान्त कीलहान साहब ने एपि० इंडि० के दूसरे भाग मे दिया है। उसके तथा और जो नयी बातें ज्ञात हुई हैं उनके आधार पर कलचुरियों का इतिहास नीचे दिया जाता है।"

## १—कोकल्लदेव

"उपर्युक्त लेखों मे कोक्कलदेव का विशेष गुणगान किया गया है। लिखा है—"उत्तर के भोजराज और दक्षिण के वल्लभ राज मानों ये दो नृपरूप जयस्तम्भ कोकल्लदेव ने खड़े किये हैं।"
( हिन्दू भारत का उत्कर्ष २१४-२१५ )

सरदार म्युजियम और सुमेर पब्लिक लाइब्रेरी के सुपरिटेंडेंट तथा जसवन्त कालेज जोधपुर के प्रोफेसर साहित्याचार्य पंडित विश्वेश्वर नाथ रेउ अपने "भारत के प्राचीन राजवंश" नामक पुस्तक के प्रथम भाग पृ० ३९ पर कोकल्लदेव के सम्बन्ध में लिखते हैं कि—"बनारस के दानपत्र में उसको शास्त्रवेत्ता, धर्मात्मा, परोपकारी, दानी, योगाभ्यासी तथा भोज, वल्लभराज, चित्रकूट के राजा श्रीहर्ष और शंकरगण का निर्भय करने [illegible]
लिखा है। और बिल्हारी के शिल[illegible] है [illegible]

सारी पृथ्वी को जीत, दो कीर्तिस्तम्भ खड़े किये थे—दक्षिण में कृष्णराज और उत्तर में भोजदेव। इस लेख से प्रतीत होता है कि उपरोक्त दोनों राजा, कोक्कलदेव के समकालीन थे; जिनकी शायद उसने सहायता की हो। इन दोनों में से भोज, कन्नौज का भोजदेव (तीसरा) होना चाहिये; जिसके समय के लेख वि० सं० ६१६, ६३२, ६३३ और (हर्ष) सं० २७६ = (वि० सं० ६३६) के मिल चुके हैं। वल्लभराज, दक्षिण के राष्ट्रकूट (राठौड) राजा कृष्णराज (दूसरे) का उपनाम था। बिल्हारी के लेख में, कोकल्लदेव के दक्षिण में कृष्णराज का होना साफ साफ लिखा है; इसलिये वल्लभराज, यह नाम राठौड़ कृष्णराज दूसरे के वास्ते होना चाहिये, जिसके समय के लेख श० सं० ७६७ (वि० स० ६३२) ८२२ (वि० ६५७) ८२४ (वि० ६५६) और ८३३ (वि० ९६८) के मिले हैं।"

"राठौड़ों के लेखों से यह भी प्रमाणित होता है कि, उसका सम्बन्ध, चेदि के राजा कोकल्ल की पुत्री से हुआ था। जो संकुक की छोटी बहिन थी।"

चित्रकूट, जेजाहुति (बुन्देलखंड में जभौती) प्रसिद्ध स्थान है; इसलिये श्री हर्ष, महोबा का चन्देल राजा, हर्ष होना चाहिये जिसके पौत्र धंगदेव के समय के वि० सं० १०११ और १०५५ के लेख मिले हैं।"

प्रसिद्ध पुरातत्वज्ञ रायबहादुर डा० हीरालाल जनवरी सन् १९३२ ई० के "हैहय क्षत्रिय मित्र" अंक १ भाग २८ पृष्ठ ३ पर लिखते हैं:—

"कुछ दिन हुए, बिलासपुर जिले के आमोदा ग्राम में एक ताम्रलेख मिला था। उसमें कोकल्लदेव के जीते हुये देशों की नामावली दी है। उसमें लिखा है कि कोकल्लदेव ने कर्णाटक, बंगाल, गुजरात, कोंकण और शाकम्भरी के राजाओं को तथा

तुरुष्कों और रघुवंशियों को पराजित किया। इससे जान पड़ता है कि कोकल्लदेव ने भारत के पश्चिमीय विदेशों पर आक्रमण किया था। और कदाचित् सिंध के मुसलमानों को भी शिकस्त दी थी। उसने स्पष्टत गुजरात पर तो आक्रमण किया ही था, वहाँ से सिन्ध निकट ही है। उस जमाने में तुरुष्क (तुरक या मुसलमान) वहीं पर राज करते थे। जान पड़ता है कि उन्हीं से मुठभेड़ हुई होगी। अरबवालों ने ७१२ ई० में सिन्ध को अपने आधीन कर लिया था और १०७५ ई० तक राज्य करते रहे। कोकल्लदेव का समय नवीं शताब्दी में पड़ता है, इसीलिये लड़ाई अरबी लोगों ही से ठनी होगी। यह ठीक नहीं जान पड़ता है कि उस समय रघुवंशी कहाँ राज्य करते थे। यदि वे रामचन्द्र के वंशज समझे जाँय तो उनका देश कोशल होना चाहिये। कोकल्लदेव के देश का एक भाग कोशल कहलाता है, इसलिये कदाचित् देश का नाम न लिख कर, उस देश की शासक जाति का नाम लिखना बेहतर समझा गया हो। रघुवंशी सूर्यवंशी थे। हैहय चन्द्रवंशी। महाभारत में एक जगह लिखा है कि राजा सगर के समय में अवध के सूर्यवंशियों और हैहयों के बीच में बड़ा युद्ध हुआ था। इसलिये कहा जा सकता है कि इन दोनों वंशों का वैर परम्परा से चला आ रहा था। अवसर पाकर ये लोग चूकते न रहे होंगे। कदाचित् रघुवंशियों पर आक्रमण करने का यह भी एक कारण रहा हो। कोकल्लदेव की राष्ट्रकूट (राठौर) और कन्नौज के गुर्जर, प्रतिहार (पड़िहार) राजाओं से अच्छी बनती थी। उसने अपनी लड़कियाँ दे कर इन लोगों से विवाह सम्बन्ध कर लिया था। उसने चित्रकूट के राजा श्री हर्ष और गोरखपुर जिले के कसया के राजा शंकरगण को सहायता देकर उनसे मैत्री कर ली थी। बुन्देलखण्ड के चन्देल भी उसके सम्बन्धी थे, क्योंकि उसकी रानी नट्टादेवी चन्देलिन राज

कुमारी थी। इस प्रकार उसका राज्य चारों ओर के आक्रमणों से सुरक्षित था।"

श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य लिखते हैं—"सम्भवतः भोज-राज की दृढ़ मित्रता के कारण कोक्कल्ल को उस समय ऊँची प्रतिष्ठा प्राप्त हुई होगी उक्त राजाओं से कोक्कल्ल की मित्रता ही नहीं, नाता भी था। कोक्कल्ल की कन्या कृष्णराज की पटरानी थी संभवतः उसकी दूसरी कन्या भोजराज से व्याही गई होगी। कोकल्ल का विवाह चन्देल हर्ष की बहिन 'नट्टा' से हुआ था। हैहयों की गणना उच्च क्षत्रियों में होती थी। इस कारण सभी राजकुल उनसे सम्बन्ध स्थापन करने के लिये उत्सुक रहते थे। ईसा की सातवीं, आठवीं तथा बाद की शताब्दियों में दक्षिण के दोनों चालुक्य वंशों ने हैहयों से नाता जोड़ा था। बारहवीं शताब्दी में भी प्रसिद्ध क्षत्रिय कुल हैहयों के साथ सम्बन्ध स्थापन करने के लिये उत्सुक रहा करते थे। पृथ्वीराज चौहान ने हैहयों की एक कन्या के साथ विवाह किया था। सारांश, उस समय कोक्कल्ल का महत्व बहुत बढ़ा चढ़ा था। इसका कारण उसका अलौकिक पराक्रम न होकर यह है कि उसने विभिन्न वैभवशाली नृपतियों से स्नेह सम्बन्ध या नाता जोड़ लिया था। लेखों में वर्णित उसका महत्व अगर सत्य भी मान लिया जाय, तो भी उसका कारण लेखोक्त बातों से भिन्न है।"

कोक्कल्लदेव निश्चय ही अलौकिक पराक्रमी था। यदि ऐसा न होता तो यह नितान्त असंभव था कि वह अपनी सत्ता स्थापित कर सका होता। स्नेह सम्बन्ध और नाते का ऐसा अनुचित लाभ राज्य रक्षा या राज्य विस्तार के सम्बन्ध में प्राप्त करने की बात कहना राजनैतिक दृष्टिकोण की नितान्त अभिज्ञता है। त्रिपुरी, जहाँ कलचुरियों का इससे पूर्व कोई स्थान न था, बिना बाहु-बल के एक बड़े राज्य के रूप में कैसे विकसित हुआ। निश्चय

ही उसका फैलाव काशी तक रहा। जहाँ उसका ताम्रपट लेख मिला है।

## २—मुग्धतुंग (धवल)

कोक्कलदेव के १८ पुत्र थे। जिनमें सबसे बड़ा मुग्धतुंग था, जो धवल के नाम से इतिहास के पृष्ठों में प्रसिद्ध है। कोक्कलदेव ने मुग्धतुंग को ही त्रिपुरी का शासक बनाया था और अन्य १७ पुत्रों को उसने अलग अलग महलों का राना नियत किया था। इन्हीं १७ पुत्रों में से एक पुत्र ने दक्षिण कोशल में अपनी सत्ता स्थापित की थी। बाद में जिसके वंशजों में से रत्नदेव ने अपनी राजधानी का नाम रत्नपुर रक्खा था। इन्हीं की एक शाखा नासिक के पास कल्याणी में भी थी, जिनका विवरण हम आगे देंगे।

बिल्हारी के लेख में लिखा है कि, कोक्कल के पीछे उसका पुत्र मुग्धतुंग और उसके बाद उसका पुत्र केयूरवर्ष राज्य का शासक हुआ था। केयूरवर्ष का दूसरा नाम युवराजदेव था, परन्तु बनारस के दानपत्र से ऐसा पाया जाता है कि कोक्कलदेव का उत्तराधिकारी उसका पुत्र प्रसिद्ध धवल हुआ, जिसके बालहर्ष और युवराजदेव नामक दो पुत्र हुए, जो इसके बाद क्रमशः गद्दी पर बैठे थे।

इन दोनों लेखों से पाया जाता है कि प्रसिद्ध धवल, मुग्धतुंग का उपनाम था।

पूर्वोक्त बिल्हारी के लेख में लिखा है कि मुग्धतुंग ने पूर्वीय समुद्र तट के देश विजय किये, और कोशल के राजा से पाली छीन ली। इस कोशल का अभिप्राय दक्षिण कोशल से होना चाहिये। और पाली, या तो किसी देश विभाग का अथवा विचित्रध्वज का नाम हो, जो पालीध्वज कहलाता था, और

में फैला हुआ था, उसे हम वर्तमान समय मे भारतीय इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान एव इतिहास विषय पर श्री मगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्तकर्त्ता श्री प० जयचन्द्र विद्यालकार लिखित "इतिहास प्रवेश" नामक पुस्तक के १८४ पृष्ठ से उद्धृत कर रहे हैं। वे लिखते हैं —"अन्तर्वेद का साम्राज्य कमजोर होने से विन्ध्यमेखला के सामन्त राज्य स्वतत्र हो गये। जमना के दक्खिन से विदर्भ और कलिग की सीमा तक पुराना चेदि देश था। इस युग मे चेदि नाम उसके दक्खिनी अश का रहा। उत्तरी अश जेजाकभुक्ति या जझौती कहलाता था। चेदि के कलचुरिवश की राजधानी त्रिपुरी (जबलपुर के पास आधुनिक तेवर) थी। महाकोशल अर्थात् छत्तीसगढ भी उसके अधीन रहा। उसकी पच्छिमी सीमा वर्धा नदी तक थी।"

## ४—केयूरवर्ष (युवराजदेव)

बालहर्ष की मृत्यु के उपरान्त उसका छोटा भाइ केयूरवर्ष उपनाम युवराजदव कलचुरि साम्राज्य का शासक हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवत बालहर्ष अल्पकाल मे ही नि सन्तान स्वर्गवासी हुआ था और इसीलिये बड़े भाई के बाद उसे शासन की बागडोर अपने हाथों में लेनी पड़ी थी।

बिलहारी के लेख में लिखा है कि इसने गौड, कर्णाट, लाट, कश्मीर और कलिग आदि देश की स्त्रियों के साथ केलि विलास किया था। अनेक देशों को विजय किया था।* परन्तु उसमें यह नहीं लिखा है कि उसके द्वारा विजित प्रदेश कौन कौन से थे, और उन राजाओं का नाम क्या था। कुछेक लेखकों का विचार है कि केयूरवर्ष उपनाम युवराजदेव के सम्बन्ध में

---

* भारत के प्राचीन राजवश पृ० ४२

बिल्हारी की प्रशस्ति में यह अतिशयोक्ति है। हो सकता है, किन्तु उक्तियाँ नितान्त तथ्यशून्य नहीं होंगी।

कलचुरि साहित्य के मर्मज्ञ और पुरातत्व के प्रसिद्ध विद्वान स्व० राय० डा० हीरालाल १९३२ ई० जनवरी के "हैहय क्षत्रिय मित्र" पृष्ठ ४ पर लिखते हैं कि--"यह नृपति युद्ध प्रिय जान पड़ता है, क्योंकि इसकी प्रशंसा में यह लिखा मिलता है कि "उसने गौड़ देश की, कर्णाटक की बालाओं के साथ क्रीड़ा की, लाटदेश की ललनाओं के ललाट अलंकृत किये, काश्मीर की कामिनियों से कामक्रीड़ा की और कलिंग की स्त्रियों से मनोहर गीत सुने। कैलाश से लेकर सेतुबन्ध तक और पश्चिम की ओर समुद्र तक उसके शस्त्रों ने शत्रुओं के हृदय में पीड़ा उत्पन्न कर दी।" इस वर्णन से यही जान पड़ता है कि उसने समस्त भारतवर्ष को अपने अधीन नहीं कर लिया, तो हल्ला तो अवश्य डाला।"

मेरा दृष्टिकोण है कि युवराजदेव के सम्बन्ध में बिल्हारी की प्रशस्ति का उपरोक्तवर्णन अवश्यमेव सत्य है, क्योंकि युवराजदेव के समकालीन चन्देल नरेश यशोवर्म्मन ने इसे युद्ध में परास्त किया था, और जिसे खजुराहो की प्रशस्ति में स्थान मिला है। यदि युवराजदेव इस प्रकार साहसी, रणप्रिय और साम्राज्य विस्तार प्रिय नरेश न होता तो चन्देल राजा यशोवर्मन के महत्व को प्रकट करने के लिये चेदिराज युवराजदेव को युद्ध में हरा देने की घटना का उल्लेख करना एक अप्रासंगिक और बेकार बात होती इसके साथ ही फिर हम यह भी देखते हैं, जैसा कि खजुराहो की प्रशस्ति कहती है कि-"असंख्य सेना वाले चेदी के राजा को यशोवर्मा ने परास्त किया।" तभी तो यशोवर्मा में यह साहस हुआ कि उसने भारत जैसे महादेश का दिग्विजय करने का संकल्प किया। विजय ही साहस की जननी होती है, और बलशाली

युवराजदेव ने पराजित होकर चन्देलराज यशोवर्मा की महत्वाकांक्षा मे महान योग का कार्य किया। यशोवर्मा भारत दिग्विजय के लिये निकल पड़ा। श्री प० जयचन्द्र विद्यालंकार "इतिहास प्रवेश" पृष्ठ १८३ पर लिखते हैं कि, यशोवर्मा चन्देल (लगभग ९३०-९५० ई०) ने (सर्वप्रथम) डहाला (डाहल देश=ऐसा समझ पड़ता है कि उस काल चेदि देश डाहल देश के नाम से ही प्रसिद्ध था। हम आगे कह आये हैं कि कलचुरि अपने को दहरिया भी कहते थे। और यह सब उनके पूर्वज दहरसेन के ही कारण था) और उसके बाद मगध, मिथिला और गौड़ तक चढ़ाई की, और पूर्वी हिमालय तक जाकर वहाँ की काश्मीरी या कम्बोज बस्ती को हराया। उसके बेटे धग ने (लगभग ६५०-६६५ ई०) अंग और राढ देश पर चन्देलों का आधिपत्य जारी रक्खा। दसवीं सदी के अंतिम भाग में पालवंशी राजा महीपाल (लगभग ६७५ १०२६ ई० में) ने फिर धीरे धीरे अपने पुरखों के राज्य का पुनरुद्धार किया।"

अतएव बिल्हारी की प्रशस्ति मे युवराजदेव के सम्बन्ध में लिखी बात अतिशयोक्ति से परे और यथार्थता के अत्यन्त समीप है। निश्चय ही युवराजदेव महावीर पुरुष था, यह बात अलग है कि उसने अपनी विजयों के साथ साथ स्त्रियों के साथ काम क्रीडायें कीं। प्राय विजय के उन्माद में मदोन्मत्त पुरुष ऐसा करते हैं। आज के जर्मनी और जापान जैसे विजित प्रदेशों में भी यही हो रहा है। यद्यपि यह अनाचार है, और इसीलिये सम्भवत वह अपनी इन विजयों का स्वामी न बना सका, वह मद में चूर अपने पड़ोसी और नातेदार चन्देलों से युद्ध में पराजित होकर चन्देलों के उत्कर्ष और उनके वैभव वृद्धि का कारण बना।

श्री हीरालाल जी लिखते हैं—महाराज युवराजदेव का विवाह चालुक्य राजा अवन्तिवर्मा की पुत्री नोहला देवी के साथ हुआ

था। नोहला दान पुण्य बहुत किया करती थी। उसने शिव का एक मन्दिर बनवाया, जिसके भोग के लिये उसने सात गाँव लगा दिये थे। परन्तु युवराजदेव इससे भी कई गुना बढ़कर दानी निकला। उसने एक मठ के लिये तीन लाख वार्षिक आय के गाँव भेंट दिये। कहते हैं, उसने अपनी प्रशस्तियों में इनकी कहीं कोई चर्चा भी नहीं की।

जिस मठ को यह दान दिया गया था, वह गोलकी मठ कहलाता था। इसके आचार्य पाशुपत पन्थी शैव थे। कहते हैं, दसवीं शताब्दी के लगभग इस पंथ का विशेष प्रचार रहा। उसकी शाखायें मद्रास से लेकर बुन्देलखंड तक फैली हुई थीं।

मद्रास अहाते में मलकापुरम् नाम का एक गाँव है। उसमें एक शिलालेख मिला है, जिसमें गोलकी मठ के महन्तों की पट्टावली लिखी है। प्रसंगवश उसमें गोलकी मठ का इतिहास लिख दिया गया है, जो इस प्रकार है—"भागीरथी और नर्मदा के बीच डाहल मण्डल नामक देश है, वहाँ दुर्वासा मुनि के चलाये हुये शैव पन्थ के महन्त रहते थे, उनमें एक सद्भाव शंभु थे जिनको डाहल के कलचुरि राजा युवराजदेव ने तीन लाख वार्षिक आय के गाँवों का एक प्रदेश भिक्षा में दिया। तब सद्भाव शंभु ने गोलकी मठ की स्थापना की और भिक्षा में पाई जायदाद मठ के खर्च के लिये उसमें लगादी।" *

---

* बिल्हारी में नोहलेश्वर नामक शिवका मंदिर बनवाया, और धटपाटक, पोण्डी (बिल्हारी से ४ मील), नागवल, खैलपाटक (खैलवार, बिल्हारी से ६मील) वीडा, सज्जाहति और गोष्ठपाली गाँव उसके अर्पण किये। तथा पवनशिव के प्रशिष्य और शब्द शिव के शिष्य, ईश्वर शिव नामक तपस्वी को निपानिय और अंबिपाटक दो गाँव दिये।

गंगा और नर्मदा के बीच का देश अवश्यमेव डाहल देश कहलाता था, क्योंकि अरबी यात्री अलबेरूनी जब ग्यारहवीं शताब्दी में वहाँ गया था तब उसने उस देश का नाम यही लिखा था। उस समय युवराजदेव के नाती का नाती गांगेयदेव राज्य करता था। उसका भी नाम उसने परिभ्रमण की पुस्तक में दर्ज कर लिया था।

मलकापुरम् के लेख से यही झलकता है कि सद्भाव शम्भु* अवश्य ही त्रिपुरी आये होंगे और यहीं पर उन्होंने यह भारी भिक्षा अपने शिष्य कलचुरि नरेश से पाई होगी, और अवश्य त्रिपुरी के पास ही कहीं पर उन्होंने मठ स्थापित किया होगा।

त्रिपुरी के निकट सब से बड़ा मठ एक गोलगिरि पर है जो चौंसठ जोगिनी का मन्दिर कहलाता है। इसलिये अनुमान होता है कि कदाचित् यही गोलकी मठ रहा हो। मठ का आकार गोला है, और जिस पहाड़ी पर यह बना है वह भी गोलाकार है।

## ५—लक्ष्मणदेव

युवराजदेव के बाद उसका पुत्र लक्ष्मणदेव राजा हुआ। यह लगभग ६५० ई० में त्रिपुरी के सिंहासन पर बैठा था। इसने भी कोशल देश के राजा से लड़ाई ठानी और उसे हरा दिया। पूर्व देश के राजाओं से भी युद्ध छेड़ दिया और उड़ीसा देश के

*यह शैव मत का साधु था, शायद इसको नोहलेश्वर का मठाधिपति किया हो। नोहला चौलुक्य अवनीत वर्मा की पुत्री अवन्ति की पोती और सिंहवर्मा की परपोती थी। उसकी पुत्री कंडकदेवी का विवाह दक्षिण के राष्ट्रकूट (राठोड़) राजा अमोघवर्ष तीसरे (बद्दिग) से हुआ था, जिसने वि० सं० ६६० और ६६७ के बीच कुछ समय तक राज्य किया था, और जिससे खोट्टिग का जन्म हुआ था।

राजा से कालिया की एक रत्नजड़ित मूर्ति छीन ली। उस मूर्ति को उसने अपने पश्चिम समुद्र पर्यन्त धावे में गुजरात के सोमनाथ मन्दिर को अर्पण कर दिया। उसने समुद्र में स्नान कर सोमनाथ महादेव की विधिपूर्वक पूजा की थी।

प्राचीनकाल में पराजित राजा का देश बिलकुल छीन नहीं लिया जाता था, और इसीलिये वे लोग कालान्तर में फिर सम्हल कर लड़ने के लिये उद्यत हो जाते थे। लक्ष्मणदेव को इसीलिये बंगाल, पाण्ड्य, लाट और काश्मीर पर पुनः आक्रमण करके वहाँ के राजाओं को पराजित करना पड़ा था। पांड्य देश मदुरा के आस-पास था और लाट गुजरात का एक भाग था। लक्ष्मणदेव ने अपने पुत्रों में से एक को गण्डकी नदी के उत्तर के एक प्रान्त का शासक बना दिया था। उसी की सन्तति से रत्नपुर की एक शाखा चली, जो आदि में त्रिपुरी के आधीन थी, परन्तु जब उसका प्रताप घटा तब वह स्वतन्त्र हो गई।

लक्ष्मणदेव ने अपनी लड़की का विवाह दक्षिण के चालुक्य राजवंश से की थी, जिसका पुत्र महाप्रतापी तैलप था जिसने अपने वंश के गिरे हुये राज का पुनरुत्थान किया था।

बिलहरी जो मुड़वारा तहसील में ही मुड़वारा तहसील से ६ मील दूर नैऋत्य मे है। यहाँ से मुड़वारा तक एक मुरम की सड़क है। लोग बतलाते हैं कि प्राचीन काल में यह बस्ती बड़ी विस्तीर्ण थी। वह २४ मील के घेरे में बसी थी और भैसा कुण्ड जो अब वहाँ से चार मील पश्चिम में है, बस्ती के मध्य में था। उन दिनों इस पुरी का नाम पुष्पावती नगरी था। आज कल गाँव भर से खुदे हुए पत्थर तथा मूर्तियाँ मिलती हैं। यहाँ पर अनेक मन्दिर थे, वे सब आज कल टूट टाट गये हैं। प्राचीन स्थानों में विष्णु वराह का मन्दिर बचा है, परन्तु यह भी मुसलमानी जमाने का बना जान पड़ता है। आदि मन्दिर का पता नहीं है।

बिलहरी से मील भर पटपरे पर एक शिव मन्दिर का ध्वंसावशेष है, इसको कामकन्दला का महल कहते हैं। दन्तकथा है कि कामकन्दकला नाटक का नायक माधवानल यहीं पर रहता था। यह बड़ा गवैया था, परन्तु किसी कारण से राजा इससे अप्रसन्न हो गए और इसे देश निकाला दे दिया। तब यह राजा कामसेन के दरबार में गया। वहाँ कामकन्दला नाम की एक वेश्या थी। माधवानल ने इस वेश्या से ब्याह कर लिया और एक राजा की सहायता से फिर बिलहरी लौट आया और पटपरे पर अपना महल बनाया और उसका नाम अपनी स्त्री के नाम पर रखा।

प्राचीन खंडहरों में बिलहरी में एक बड़ा भारी शिलालेख मिला, है जो अब नागपुर के अजायबघर में रक्खा है। उसमें ग्यारहवीं शताब्दी के त्रिपुरी के कलचुरिवंशीय राजा केयूरवर्ष उपनाम युवराजदेव की रानी नोहला के एक शिव मन्दिर बनवाने का उल्लेख है। जान पड़ता है कि युवराजदेव के पुत्र लक्ष्मणदेव ने लक्ष्मण सागर नाम का एक तालाब अपनी माता की स्मृति को अमर बनाने के लिये यहाँ पर बनवा दिया था। लोकोक्ति के अनुसार यह तालाब लक्ष्मणसिंह नामक राजा ने बनवाया था, जिसके बारे में कहा जाता है कि सम्भवतः वह चन्देल था। निसन्देह जब कलचुरियों का बल घटा उस समय चन्देलों ने बिलहरी ले ली थी। इन्होंने उसे अपने कामदार का सदर मुकाम बना दिया था। सन् १९१० में बिलहरी की जनसंख्या २२२० और क्षेत्रफल ६५२४ एकड़ था।

कुड़वारा (वर्तमान कटनी) से ३० मील दूर [illegible] में कारीतलाई नामक स्थान है। इसके उत्तर में मील भर पर गाड़ो की एक छोटी सी बस्ती है। इस बस्ती को करनपुरा कहते हैं। इस करनपुरा से लगा हुआ एक बड़ा तालाब था, जिसका नाम सगरा या सागर बतलाया जाता है। उसके उत्तरीय बन्ध पर प्राचीन

मन्दिरों के अनेक ध्वंशावशेष अब भी विद्यमान हैं जो करनपुरा के किसी समय एक बड़े नगर होने की सूचना देते हैं। हीरालाल जी जबलपुर ज्योति पृष्ठ १२१ पर लिखते हैं—"सैकड़ों नहीं, हज़ारों खुदाव के खम्भे और मूर्तियों के स्थानान्तरण करने पर भी कई विशाल मूर्तियाँ, द्वारों और दीवालों के गढ़वा पत्थर अनेक आमलक इत्यादि अब भी विद्यमान हैं।......इसी स्थान पर एक बड़ा भारी शिलालेख मिला था। जो अब जबलपुर की कोतवाली की भीतरी दीवाल में चिपका दिया गया है। वह खंडित है, तथापि उसका सारांश उसमें विद्यमान है। उसमें लिखा है कि कलचुरि महाराज लक्ष्मण राज के मंत्री भट्ट सोमेश्वर दीक्षित ने विष्णु का मन्दिर बनवाया और राजा और रानी ने अनेक ग्राम अर्थात दीर्घ साखिक, चक्रहृदी, लल्लिपाटक, अन्तरपाट और वटवर्तिक वहाँ पर अनेक पर्वों पर दान किये। कारीतलाई से ६ मील पर दीघी नाम का गाँव है। वही दीर्घ साखिक जान पड़ता है। सात मील पर चकहदी गाँव है जो चक्रहृदी का अपभ्रंश है। अन्य तीन ग्रामों का अभी तक पता नहीं लगा। इस लेख में संवत् नहीं दिया गया, परन्तु अन्य लेखों से सिद्ध हो चुका है कि लक्ष्मण राज दशवीं शताब्दी में राज करता था। इसी के वंश में करनदेव हुआ। जो सन् १०४२ ई० में सिंहासन पर बैठा। वह लक्ष्मणराज के नाती का नाती था। कोई कोई इतिहासकार कहते हैं कि कर्णपुरा का नाम इसी कर्ण के नाम से रक्खा गया था, क्योंकि कर्णदेव अपनी राजधानी त्रिपुरी (तेवर) से उठाकर वहाँ ले गया था। यह अनुमान कर्ण पुर नाम पर से किया गया जान पड़ता है। इसके लिये और कोई आधार नहीं है। कर्णदेव ने अपने जीते जी अपने पुत्र यशःकर्णदेव का अभिषेक त्रिपुरी में कराया था। उस समय त्रिपुरी इन्द्रपुरी के समान समझी जाती थी, इसलिये दूसरी

राजधानी स्थापित करने का कोई उपयुक्त कारण नहीं ज्ञात होता।
—यह तो निश्चित है कि कारी तलाई प्राचीन काल में बड़ा नगर था। वराह की मूर्ति जो अब भी मत्र मे प्रमुख है और सोमेश्वर के बनाए मन्दिर से अवश्य प्राचीन है क्योंकि शिलालेख में इसका उल्लेख है, और लिखा है कि उसी के समीप वराह को १२ खण्डों का खेत दिया गया था। कारीतलाई का वराह खोह के समान दिखाई देता है। खोह नागौद राज्य के उचहरा से दो मील है। वहाँ पर उच्चकल्प के महाराजा राज्य करते थे। उनमें से एक महाराजा जयनाथ का सन् ४९३ ई० का ताम्रपत्र कारीतलाई के वराह मन्दिर में सन् १८५० ई० के लगभग मिला था। इससे भी वहाँ के वराह की मूर्ति प्राचीन जान पड़ती है। उपरोक्त उद्धरण से ऐसा समझ पड़ता है, कलचुरि काल के माण्डलिक यहाँ रहते थे। जो कलचुरि साम्राज्य के जिलाधीश के रूप में रहे होंगे।

चन्देल वंश में लक्ष्मणदेव या लक्ष्मणसिंह नाम का कोई भी राजा नहीं हुआ। हाँ, यह अवश्य है कि लक्ष्मण सागर के किनारे चन्देलों ने जो एक गढ़ी बनवाई सम्भवत उसी से पीछे के लोगों ने अनुमान कर लिया कि तालाब चन्देलों ने बनवाया होगा।

लक्ष्मणदेव ने वैद्यनाथ के मठ पर हृदय शिव को और नोहलेश्वर के मठ पर उसके शिष्य अघोर शिव को नियत किया था। इन साधुओं की शिष्य परम्परा बिलहरी के लेख में इस तरह दी है—कदम्ब गुहा स्थान में, रुद्र शंभु नामक तपस्वी रहता था। उसका शिष्य मत्तमयूरनाथ, अवन्ती के राजा के नगर में जा रहा था। उसके पीछे क्रमशः धर्मशंभु, सदा शिव माधुमतेय, चूड़ा शिव, हृदय शिव और अघोर शिव हुए।

बिलहरी के लेख में लिखा है कि, वह अपनी और अपने सामन्तों की सेना सहित, पश्चिम की विजययात्रा में, शत्रुओं को

जीतता हुआ समुद्र तट पर पहुँचा था। वहाँ पर उसने समुद्र में स्नान कर सुवर्ण के कमलों से सोमेश्वर (सोमनाथ सौराष्ट्र के दक्षिणी तट पर स्थित) का पूजन किया; और कोसल के राजा को जीत, औड्र के राजा से ली हुई, रत्नजड़ित सुवर्ण की बनी कालिय (नाग) की मूर्ति, हाथी, घोड़े, अच्छी पोशाक, माला और चन्दन आदि सोमेश्वर (सोमनाथ) के अर्पण किये।

लक्ष्मणदेव की रानी का नाम राहड़ा था। इसकी पुत्री बोथा देवी का विवाह दक्षिण के चालुक्य (पश्चिमी) राजा विक्रमादित्य चौथे से हुआ था। प्रसिद्ध तैलप राजा इसी बोथा का पुत्र था, जिसने राठोड़ राजा कक्कल (कर्क दूसरे) से राज्य छीन, वि० सं० १०३० से १०५४ तक राज्य किया था। मालवा का प्रसिद्ध राजा भोज के पिता सिन्धुराज का बड़ा भाई मुंज (पृथ्वी वल्लभ) से युद्ध में कई बार हार जाने पर भी इसने हिम्मत न छोडी और अन्त में मुंज युद्ध में तैलप से हार गया और पकड़ा जाकर तैलप के हाथों मारा गया।

## ६—शंकरगण

लक्ष्मणदेव के दो पुत्र थे। जिनका नाम था शंकरगण और युवराजदेव। ये दोनों ही क्रमशः त्रिपुरी के शासक हुये थे।

शंकरगण अपने पिता का ज्येष्ठ पुत्र था, इसलिये त्रिपुरी के राजसिंहासन पर वही बैठा। परन्तु इसने कितने दिन राज्य किया और कब इसकी मृत्यु हुई। कुछ ऐतिहासिक वृत्तान्त न मिलने से इसके सम्बन्ध में इस प्रकार की बातें नहीं जानी जा सकीं।

## ७—युवराजदेव (द्वितीय)

युवराजदेव (द्वितीय) महाप्रतापी राजा लक्ष्मणदेव का

द्वितीय पुत्र था। कर्णवेल ( प्राचीन कर्णावती ) में प्राप्त एक लेख में लिखा है कि इसने अनेक राजाओं को जीता था, और इस जीत में प्राप्त सम्पूर्ण लक्ष्मी को सोमेश्वर ( सोमनाथ ) के अर्पण कर दिया था।

उदयपुर ( ग्वालियर राज्य ) में प्राप्त एक लेख मे लिखा है कि, परमार राजा मुंज (वाक्पतिराज) ने युवराजदेव को युद्ध में जीता, और त्रिपुरी पर अपनी तलवार उठाई थी। हो सकता है, किन्तु उसने त्रिपुरी को विजय कर लिया होगा, इस घटना पर विश्वास नहीं होता।

हम ऊपर लिख आये हैं कि चालुक्यराज तैलप में और मुंज में अनेक बार युद्ध हुआ था। तैलप मुंज से लगातार युद्धों में १६ बार हारा था, किन्तु सत्रहवीं बार तैलपराज विजयी हुआ। मुंज उसके हाथों बन्दी होकर मारा गया। श्री जयचन्द्र विद्यालंकार जी इतिहास प्रवेश पृ० १८६ में इस घटना को ९९४ ई० में हुआ मानते हैं। अतएव हो सकता है कि महत्त्वकांक्षी मुंज ने त्रिपुरी पर तलवार उठाई हो, किन्तु जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं त्रिपुरी उससे विजय नहीं हुई होगी। क्योंकि हम देखते हैं कि त्रिपुरी पर मुंज के बहुत पीछे समय तक लगातार युवराजदेव के वंशज कलचुरियों का शासन स्थिर रहा है।

वाक्पतिराज मुंज के लेख वि० सं० १०३१ और १०३६ के मिले हैं, और वि० सं० १०५१ और १०५४ के बीच किसी वर्ष उसका मारा जाना निश्चित है, इसलिए उपर्युक्त घटना वि० सं० १०५४ के पूर्व हुई होगी।

## ८—कोकल्लदेव ( द्वितीय )

कोकल्लदेव द्वितीय युवराजदेव द्वितीय का पुत्र था। युवराज देव के पीछे त्रिपुरी के राजसिंहासन पर कोकल्लदेव आसीन हुआ

था। इसका कुछ भी वृत्तान्त नहीं मिलता है। इसका पुत्र गांगेय-देव महान् प्रतापी राजा था, जो मालवराज मुंज (वाकपति) के छोटे भाई सिंधुराज के पुत्र प्रसिद्ध राजा भोज के लगभग हुआ था।

राजतरंगिणी का कर्त्ता लिखता है--"पद्मराज नामक पान बेचने वाले ने, जो काश्मीर के राजा अनन्तदेव का प्रीतिपात्र था, मालवे के राजा भोज के भेजे हुए सुवर्ण-समूह से पापसूदन कपटेश्वर (कोटेर-काश्मीर) का कुण्ड बनवाया। भोज ने प्रतिज्ञा की थी कि पापसूदन के उस कुण्ड से नित्य मुख धोऊँगा अतएव पद्मराज ने वहाँ से उस तीर्थजल से भरे हुए काँच के कलश पहुंचाते रह कर भोज की उस प्रतिज्ञा को पूर्ण किया। पापसूदन तीर्थ (कपटेश्वर महादेव) काश्मीर में कोटेर गाँव के पास, ३३°-४१ उत्तर ७५°-११ पूर्व में है। यह कुण्ड उसके चारों तरफ खिंची हुई पत्थर की दृढ़ दीवार सहित अबतक विद्यमान है। कुण्ड का व्यास कोई ६० गज है। वह गहरा भी बहुत है। वहीं एक टूटा हुआ मन्दिर भी है, जिसके विषय में लोग कहते हैं कि यह भी भोज ही का बनवाया हुआ है। बहुधा पहले के राजा दूर-दूर से तीर्थों का जल मँगवाया करते थे। आजकल भी इसके उदाहरण मिलते हैं।

संभव है, धारा की लाट मसजिद भी भोज के समय के खंडहरों से ही बनी हो। उसे वहाँ वाले भोज का मठ बताते हैं। उसके लेख से प्रकट होता है कि उसे दिलावरखाँ गोरी ने ८०७ हिजरी (१४०५ ई०) में बनवाया था। इस मसजिद के पास ही लोहे की एक लाट पड़ी है। उसी से इसका यह नाम प्रसिद्ध हुआ। तुजक जहाँगीरी में लिखा है कि यह लाट दिलावरखाँ गोरी ने ८७० हिजरी में, पूर्वोक्त मसजिद बनवाने के समय

रक्खी थी। परन्तु उक्त पुस्तक के रचयिता ने सन् लिखने में भूल की है। ८०७ के स्थान पर उसने ८७० लिख दिया है।

जान पडता है कि यह लाट भोज का विजय स्तम्भ है। इसे भोज ने दक्षिण के चौलुक्यों और त्रिपुरी (तेवर) के चेदियों पर विजय प्राप्त करने के उपलक्ष्य में गडा किया होगा। इस लाट के विषय में एक कहावत प्रसिद्ध है। एक समय धारा में राक्षसी के आकार की एक तेलिन रहती थी। उसका नाम गागज़ो या गागी था उसके पास एक विशाल तुला थी। यह लाट उसी तुला का डंडा थी और इसके पास पड़े हुए बडे बडे पत्थर उसके वजन-बाँट थे। वह नालछा में रहती थी। कहते हैं, धारा और नालछा के बीच की पहाडी, उसका लहँगा झाडने से गिरी हुई रेत से बनी थी। इसी से वह तेलिन-टेकरी कहाती है। इसी से यह कहावत चली है कि—"कहाँ राजा भोज और कहाँ गाँगली तेलिन" जिसका अर्थ आज कल लोग यह करते हैं कि यद्यपि तेलिन इतनी विशाल शरीर वाली थी, तथापि भोज जैसे राजा की वह बराबरी न कर सकती था।

परन्तु इस लाट का सम्बन्ध चेदी के गांगेयदेव और दक्षिण के चौलुक्य जयसिंह पर प्राप्त की हुई भोज की जीत से हो तो कोई आश्चर्य नहीं। जयसिंह तिलङ्गाने का राजा था। उसी पर प्राप्त हुई जीत का द्योतक होने से इस लाट का नाम 'गांगेय तिलिंगाना लाट' पडा होगा। जब जयसिंह ने धारा पर चढ़ाई की तब नालछा उसके मार्ग में पडा होगा। सो शायद उसने इस पहाडी के आस पास डेरे डाले होंगे। इस कारण इसका नाम तिलिंगाना पड गया होगा। समय के प्रभाव से इस विजय का हाल और विजित राजाओं का नाम आदि, सम्भव है, लोग भूल गये हों और इन नामों के सम्बन्ध में कहावतें सुनकर नई कथा बना ली हो। इसी से "कहाँ राजा भोज और कहाँ गांगेय

और तैलंगराज" की कहावत में गांगिया तेलिन या गंगू तेली को ठूस दिया हो। गांगेय का निरादर-सूचक या अपभ्रष्ट नाम गांगी, या गांगली और तिलिंगाना का तेलन हो जाना असम्भव नहीं। कहावतें बहुधा किसी न किसी बात का आधार जरूर रखती हैं। परन्तु हम यह पूर्ण निश्चय के साथ नहीं कह सकते कि तिलिगाने के कौन से राजा का हराया जाना इस लाट से सूचित होता है। तथापि हम इतना अवश्य कह सकते है कि यह बात १०४२ ई० के पूर्व हुई होगी। क्योंकि उस समय गांगेय-देव का उत्तराधिकारी कर्ण राजासन पर बैठा था। (भारत के प्राचीन राजवंश पृ० ११२)

इस स्थल पर राजतरगिणीकार की कल्पनाओं का सहारा लेकर रेउ जी ने भी अपने अनुमान और कल्पनाओं का क्षेत्र विस्तृत किया है। वैसे तो कहावत "कहाँ राजा भोज और कहाँ भोजवा तेली" के रूप मे जन-समाज में प्रचलित है। जो भोज नाम का अर्थ रखती है। परन्तु गांगेयदेव और तैलंगराज जयसिंह का तुक रेउ जी की कल्पना की चीज है। बात पुरानी है, वास्तविकता का कोई आधार भी नहीं है, परन्तु इस कल्पना में यह बात समाई हुई है कि गांगेयदेव और चालुक्य जयसिंह ने मालवाराज्य की धारा नगरी पर आक्रमण किया था। भोज ने इन आक्रमण-कारियो से धारा की रक्षा की थी और आक्रमणकारियों को उनके अपने उद्देश्य में सफलता नहीं मिली।

"मदन की बनाई पारिजात 'मंजरी' नामक नाटिका से, जो धारा के राजा अर्जुनवर्मा के समय में लिखी गई थी, प्रतीत होता है कि भोज ने युवराजदेव (दूसरे) के पौत्र गांगेयदेव को, जो प्रतापी होने के कारण विक्रमादित्य कहलाता था, हराया।" (भा० के प्रा० राजवंश पृष्ठ ११५)

"भोज के राजत्वकाल के तीन संवत् मिलते हैं। पहला १०१९ ई० (वि० सं० १०७६) जब चौलुक्य जयसिंह ने मालवे-वालों को भोज सहित हराया। दूसरा, वि० सं० १०७८ (१०२२ ई०) यह पूर्वोक्त दानपत्र का समय है। तीसरा, वि० सं० १०९९ (१०४२ ई०) जब राजमृगाक नामक ग्रन्थ बना।

"इससे प्रतीत होता है कि भोज वि० सं १०९९ (१०४२) ई० तक विद्यमान था। उसके उत्तराधिकारी जयसिंह का दान पत्र वि० सं० १११२ (१०५५ ई०) का मिला है। जयसिंह ने थोड़े ही समय तक राज्य किया था। इससे भोज का देहान्त वि० सं० १११० या ११११ (१०५३ या १०५४ ई०) के आस-पास हुआ होगा। (भारत के प्राचीन राजवंश भा० १—पृ० १२३ १२४)

"राजवल्लभ ने अपने भोजचरित में लिखा है कि जब भोज ने राज्यकार्य ग्रहण कर लिया तब मुंज की स्त्री कुसुमवती (तैलप की बहिन) के प्रबन्ध मे भोज के सामने एक नाटक खेला गया। उसमें तैलप द्वारा मुंज का वध दिखलाया गया। उसे देख कर भोज बहुत ही क्रुद्ध हुआ। और कुसुमवती को मरदानी पोशाक में अपने साथ लेकर तैलप पर उसने चढाई की और उसे कैद करके मार भी डाला। इसके बाद कुसुमवती ने अपनी शेष आयु सरस्वती नदी के तीर पर बौद्ध सन्यासिन के वेश में बिताई।"

राजवंश के लेखक पृष्ठ ११३ पर इस उद्धरण के नीचे ही लिखते हैं—'यह कथा कवि कल्पित जान पड़ती है, क्योंकि मुंज को मारने के बाद तैलप ९९७ ई० ही में मर गया था, जब भोज बहुत छोटा था। यह तैलप का पौत्र, विक्रमादित्य पंचम (कल्याण का राजा) ही सकता है। उसका राजत्व काल १००९ से १०१८ तक था। सम्भव है, उस पर चढाई करके भोज ने उसे

पकड़ लिया हो और मुंज का बदला लेने के लिये उसे मार डाला हो। विक्रमादित्य के भाई और उत्तराधिकारी जयसिंह दूसरे के शक संवत् ६४१ (वि०सं०१०७६) के, एक लेख से इसका प्रमाण मिलता है। उसमे लिखा है कि जयसिंह ने भोज को उसके सहायकों सहित भगा दिया। यह भी लिखा है कि जयसिंह भोज रूपी कमल के लिये चन्द्र समान था। ( भा० के प्रा० रा० ग० भाग पृ० ११४ )

उपरोक्त उद्धरण जो परस्पर विरोधी भी हैं, यह बताते हैं कि इन राजाओं में अत्यन्त समीपता (पडोसी) होने के कारण नित्य युद्ध हुआ करते थे। भोज जो इनका समकालीन था, उसकी प्रसिद्धि इन राजाओं की अपेक्षा बहुत है। इसका एकमात्र कारण यह है कि भोज इन सब की अपेक्षा विद्याव्यसनी था। उसकी सभा में अनेक विद्वान् थे। भोज प्रबन्ध और प्रबन्ध चिन्तामणि आदि में कालिदास, वररुचि, सुबन्धु, बाण, अमर, रामदेव, हरिवंश, शंकर, कलिंग, कर्पूर, विनायक, मदन, विद्याविनोद, कोकिल, तारेन्द्र, राजशेखर, माघ धनपाल, सीता, पण्डिता, मयूर, मानतुङ्ग आदि विद्वानों का भोज ही की सभा में रहना लिखा है। परन्तु इसमें से बहुत से विद्वान् भोज से पहले हो गये थ। इसलिये इस नामावली पर एकदम विश्वास नहीं होता। फिर भी भोज अत्यधिक विद्याव्यसन के कारण ही अपने समकालीन और समान नरेशों के ऊपर उठ गया और संसार में प्रसिद्धि अर्जित की। गांगेयदेव वीर और पुरुषार्थी था।

## ९—गांगेयदेव ( विक्रमादिय )

गांगेयदेव के समय से त्रिपुरी ने फिर उन्नति की ओर प्रयाण किया। इसके चलाये हुये सोने, चाँदी और ताँबे के सिक्के

मिलते हैं, जिनकी एक तरफ, बैठी हुई चतुर्भुजी लक्ष्मी की मूर्ति बनी है और दूसरी तरफ "श्रीमद्गांगेयदेव" लिखा है।

गांगेयदेव के बाद कन्नौज के राठौड़ राजाओं, महोबा के चंदेल राजाओं, कुमारपाल, अजयदेव और मुसलमान बादशाह शाहबुद्दीन गोरी ने अपने जो सिक्के चलाए वे सब प्राय इसी की नकल हैं।

गांगेयदेव ने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की थी, जो वस्तुत यथार्थ थी। कलचुरियों के लेखों में गांगेयदेव की वीरता की भारी प्रशंसा लिखी है। महोबा से मिले हुए चंदेलों के लेख में इसको समस्त जगत् का जीतने वाला लिखा है। इसके साथ ही उसी लेख में चंदेल राजा विजयपाल को, गांगेयदेव का गर्वमिटाने वाला लिखा है। इससे मालूम होता है कि विजयपाल और गांगेयदेव के बीच किसी समय युद्ध हुआ था, परिणाम क्या रहा, यह बात धुँधली है। हो सकता है, विश्वविजयी गांगेयदेव चन्देलों को न जीत सके हों पर यह बात अत्यन्त सत्य है कि गांगेयदेव ने चढाई करके समस्त उत्तर भारत को अपने आधीन कर लिया था, फिर चन्देल तो उसके बगल में ही बसते थे। कालिंजर का प्रसिद्ध दुर्ग जो अनेक शताब्दियों से चन्देलों के अधिकार में रहता आया था, गांगेयदेव ने उसे चन्देलों से जीत कर कालिंजराधिपति की उपाधि धारण की थी। कांगडे का राजा उसके यहाँ बन्दी था, उड़ीसा और बंगाल के राजाओं को उसने युद्धभूमि में पछाड़ा था, कुन्तल जो (हैदराबाद निजाम के दक्षिण वाले पर उस समय स्थित था) को जीत कर, उसे अपने अधीन बनाकर, उसका राज्य फेर दिया था। इस प्रकार उत्तर भारत का बहुत सा भाग अपने अधीन कर लेने के कारण वह प्रयाग में रहने लगा था,

और सन् १०४१ ई० में उसने वहीं अक्षयवट के निकट अपनी सौ रानियों के साथ मोक्ष प्राप्त किया था। (इतिहास प्रवेश पृ० १८५)

अरब निवासी विद्वान् यात्री अलबेरूनी ई० सन् १०३० (वि० सं० १०८७) में जब भारत की यात्रा के लिये आया उस समय उसने महाराज गांगेयदेव के देश डाहल की भी यात्रा की थी। उसने अपनी यात्रा वृत्तान्त में डाहलराज गांगेयदेव की पर्याप्त प्रशंसा लिखी है।

## १०—कर्णदेव (कर्ण डहरिया)

कर्णदेव, गांगेयदेव का पुत्र था, वह चेदि राज्य का अपने पिता गांगेयदेव के बाद अधिपति बना। इसी समय भारतवर्ष के ठीक मध्य में केवल दो राज्य ऐसे थे, जो तुर्कों और तामिलो के हमलों से बचे हुये थे। उनमें से पहला था मालवा, और दूसरा था चेदि। महमूद गजनवी और राजेन्द्र चोल के राज्य दक्षिण और पश्चिम में उस काल बड़े प्रबल हो रहे थे, पेशावर, काश्मीर, पंजाब, गुजरात, थानेसर, मथुरा और कन्नौज तक महमूद को दौड़ हो चुकी थी और राजेन्द्र चोल का तामिल दल तांजोर से बंगाल पर टूट रहा था। उत्तर पश्चिमी भारत की जो दशा महमूद गजनवी कर रहा था, ठीक वही दशा दक्षिण और पूर्व की इस चोल राजा राजेन्द्र ने कर रक्खी थी। पांड्य, केरल, कलिंग सब पर उसका आधिपत्य हो चुका था। कर्णाटक पर चढ़ाई कर इसने तैलप के बेटे सत्याश्रय को लगातार चार वर्ष की लम्बी लड़ाई के बाद बुरी तरह हराया था। स्थल और जल सेना से उसने सिंहल को भी जीत लिया था, यही नहीं कलिंग के रास्ते समुद्रतट पर पहुँच उसने अपने जंगी बेड़े को लेकर मलाया सुमात्रा, जावा को जीतकर बृहत्तर भारत का बड़ा अंश अपने

अधीन किया था। ठीक ऐसे ही समय मध्य भारत में मालवा और चेदि दोनों ही बढ़ रहे थे। इन दिनों मालवा में राजा भोज और चेदि में गांगेयदेव और उनके बाद उनका महान प्रतापी पुत्र कर्ण अपने अपने धनुष के रोने टकार रहे थे। कन्नौज और जझौती (चंदेल) नाममात्र के नरेश थे। महमूद, राजेन्द्र चोल और गांगेयदेव के बाद राजाओं में जो थोड़ी बहुत शक्ति शेष रह गई थी, उसे डाहल के कर्ण ने निःशेष कर दी। त्रिपुरी के सिंहासन पर पैर रखते ही कर्ण ने मगधराज्य पर चढ़ाई कर दी। इस समय तक महमूद और राजेन्द्र चोल दोनों ही स्वर्ग की राह देख चुके थे। राजा महिपाल के बेटे नयपाल और कर्ण के बीच में पड़कर दीपंकर श्रीज्ञान (बौद्ध भिक्षु) आचार्य ने शान्ति करा दी, नयपाल कर्ण का अधीनस्थ और तत्पश्चात् सम्बन्धी बन गया। किन्तु कर्ण को शान्ति कहाँ। वह दक्षिणाभिमुख हुआ। उसने पहले चोल से ही युद्धारम्भ किया। पाण्ड्य और मुरल भी उसकी तलवार की नोक के नीचे आये। गुर्जर और हूण अपनी हेकड़ी भूल गये। कुग, बग और कलिंग ने महाप्रतापी महाराजा कर्ण के सिंहासन के सम्मुख माथा टेका। कीर तोते की भाँति मनोहर वाणी बोलता चरणों पर गिरा। इस प्रकार लगभग १२ वर्ष के भयकर युद्ध ने जुझार कर्ण की हाँक से भारत के चारों दिशाओं को गुंजा दिया। थानेसर, हाँसी और नगरकोट के राज्य मुसलमानी हुकूमत से मुक्त हो गये। त्रिपुरी के अतिरिक्त उत्तर भारत के साम्राज्य के लिये काशी भी कर्ण की राजधानी बनी।

प्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ रायबहादुर डा० हीरालाल जबलपुर १९३२ के हैहय क्षत्रिय मित्र पृ० ६ पर लिखते हैं, "कर्ण के जमाने में न रेलें थीं, न तार, न मोटरें थीं, न वायुयान थे और न सड़कें ही इतनी बहुत थीं कि इन दिनों के समान जल्दी आवागमन हो सके। परन्तु इन कठिनाइयों के होते हुए भी कर्ण अपनी सेनाओं

को भारतवर्ष के चारों कोनों को ले गया और समस्त देशों को जीत कर साम्राज्य स्थापित किया। उसने अपना आतंक ऐसा बैठाया कि आज भी लोग "कर्ण डहरिया, कर्ण जुझार। कर्ण हाँक जानै संसार" कह कर उसकी अमर कीर्ति का गान करते हैं। डाहर या डाहल मंडल कर्ण का पैतृक देश था, इसलिये अन्य कर्ण नृपतियों से बिलगाने के लिये उसे कर्ण डहरिया कहते थे। उस जुझार कर्ण अर्थात् रणबाँकुरे कर्ण की हाँक को कौन नहीं जानता था। उसने भारत के केन्द्र पर बैठ कर त्रिपुरी को भारतीय बल का यथार्थ केन्द्र बनाकर दिखला दिया।"

काशी से प्रकाशित होने वाले १९४९ की दीपावली के अवसर पर "संसार साप्ताहिक" के "काशीराज्य अंक" के पृष्ठ १९ पर "काशी का रक्त रंजित इतिहास" शीर्षक में उसके लेखक श्री व्रजरत्नदास जी लिखते हैं:—

"त्रेता युग में राजा सुहोत्र के पुत्र काश हुए, जिनके पुत्र काश्य या काशिराज ने काशीपुरी बसाई थी। इसके उत्तराधिकारी केतुमान ने यहाँ अपनी राजधानी बनाई। इसके अनन्तर हर्यश्व तथा उसके पुत्र सुदेव नामक दो राजाओं को हैहयों ने मार डाला। सुहोत्र का पुत्र दिवोदास हुआ, जिसने दुर्ग बनवाकर उसे सुरक्षित किया; पर स्वयं युद्ध में दुर्दम हैहय द्वारा मारा गया। इसके पुत्र प्रतर्दन ने हैहयों को पूर्णतया परास्त कर अपने राज्य को दृढ़ किया। यह प्रतर्दन रामचन्द्र का समकालीन ज्ञात होता है। इस वंश का चौबीस पीढ़ी तक राज्य करने पर महाभारत युद्ध में अन्त हुआ। इस वंश के बाद हैहयों ने अट्ठाईस पीढ़ी तक राज्य किया, जिसके अनन्तर प्रद्योत वंश के पाँच राजा हुए।

"जब गौतम बुद्ध ने सारनाथ के पास पहले-पहल उपदेश आरम्भ किया था, तब यहाँ का राजा दशरथ था, जो सकुटुम्ब

तथा सपरिवार बौद्ध धर्मानुयायी हो गया। मगधराज्य के मौर्य वंश के अधीन उन्नति करने पर काशी भी उसी राज्य में मिल गया और कई शताब्दी तक यह उसी के अधीन रहा। मौर्य वंश के बाद क्रमश, कण्व, शुंग तथा आंध्र वंशों का सन् ४३० ई० के लगभग तक राज्य रहा, जिसके अनन्तर गुप्त राज्य का प्राधान्य हुआ। इस काल में काशी की विशेष उन्नति हुई। गुप्त साम्राज्य के बाद उज्जैन के राजाओं का यहाँ अधिकार हुआ। इन्हीं उज्जयिनीपति के दौहित्र सम्राट् हर्षवर्द्धन के समय काशी सन् ६५० ई० तक इसी के अधिकार में रहा। इसी के समय ह्वानसाग नामक चीनी यात्री भारत आया था, जिसने काशी का तत्कालीन आँखों देखा वर्णन लिखा है। हर्षवर्द्धन की मृत्यु के साथ साथ उसका साम्राज्य भी अस्त व्यस्त हो गया। आठवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में कन्नौज के यशोवर्मा मौखरी ने काशीपर अधिकार कर लिया और इसको उन्नत करने में उसने बहुत प्रयास किया। सन् ८४१ ई० के लगभग काश्मीर नरेश ललितादित्य से लड़कर यह मारा गया। इस पराजय से कन्नौज का राज्य श्रीहत् हो गया तथा उसका प्रभुत्व काशी पर नहीं रह गया।

इसी बीच चेदि के हैहयवंशीय नरेशों का प्रभुत्व बढ़ने लगा, जिनके ताम्रपत्र काशी में मिलते हैं। इसी वंश के राजा कर्णदेव ने काशी में कर्णमेरु नामक मन्दिर भी स्थापित किया था। इसका प्रबन्ध चिन्तामणि नामक ग्रन्थ में कथित लिखा गया है। इससे यह ज्ञात होता है कि इस वंश का काशी पर कई पीढ़ियों से अधिकार चला आता था। कर्णदेव का वि० सं० १०६६ का ताम्रपत्र मिला है, जिससे उसका समय इसी के आस पास निश्चित होता है, परन्तु पालवंशीय बंगाल नरेश महिपाल का एक शिलालेख १०८३ वि० का सारनाथ में मिला है, जिसमें

लिखा है कि उसने काशी में कई मन्दिर बनवाये थे, और धर्म-चक्र आदि का जीर्णोद्धार कराया था। इसके पुत्र जयपाल के समय कर्ण ने बंगाल पर चढ़ाई की। इससे यही ज्ञात होता है कि काशी पर अधिकार हैहयों का ही था और महिपाल ने अस्थायी प्रभुत्व के कारण या मित्रता के सम्बन्ध में ये मन्दिर आदि बनवाये थे। कर्ण के पुत्र तथा पौत्र यशःकर्ण तथा गयकर्ण प्रबल राजे थे, जिनके अनन्तर यह राज्य क्रमशः निर्बल होता चला गया।"

"कर्ण का अपने पड़ोसी चन्देल राजाओं से वैवाहिक सम्बन्ध था। किसी बात पर क्रुद्ध होकर उसने उनका विध्वंश कर डाला था। निराशा से प्रेरित होकर चंदेल राजा कीर्तिवर्मा ने कुछ ऐसा उद्योग किया कि कर्ण का सामना करने को उद्यत हो गया। विजय मद से उन्मत्त कलचुरि सैनिक चन्देलों को तुच्छ समझने लगे थे। उन्होंने यह ध्यान में नहीं रक्खा कि कभी कभी आग की एक छोटी सी चिनगारी भी बड़े भारी ढेर को भस्म कर देती है। कीर्तिवर्मन ने सुसज्जित हो रणतुरही बजवा दी। कर्ण ने यह देख अपने क़िलेदारों को सामना करने के लिये अचानक आज्ञा दी। सेना को यथोचित् तैयारी करने के लिये समय नहीं मिला। अप्रस्तुत अवस्था में ही उन्हें रणक्षेत्र में उतरना पड़ा। कीर्तिवर्मन का सेनापति जिसने पहले से ही युद्ध की रूपरेखा खींच रखी थी, ऐसा जोड़ तोड़ लगाया कि कर्ण की सेना हार गई। कर्ण के अनेक सैनिक पकड़ लिये गये। इन्हीं में लेखक ( रायबहादुर डा० हीरालाल ) के पुरखा भी थे, जो राजघराने के सम्बन्धी होने के कारण मुड़वारा निकटस्थ बिलहरी ( प्राचीन पुष्पावती नगरी ) के किले के क़िलेदार बना दिये गये थे; और रणभूमि में सबसे पहले जा कर उपस्थित हो गये थे। पकड़े जाने पर वे महोबे के निकट वर्तमान सूरा

ग्राम की भूमि में नजर कैद कर दिये गये थे। कालान्तर में ये अपने सम्बन्धियों को बुलाकर वहीं पर स्थायी रूप से बस गये थे। तत्पश्चात् कई पीढ़ियों के बाद अपने अनुयायी घरानों के साथ अपनी प्राचीन भूमि बिलहरी को फिर लौट गये। वहाँ से क्रमश व्यापार के लिये ये लोग इधर उधर फैल गये।" (फर्वरी १९३१ का "है० च० मित्र" पृष्ठ ६८)

रासमाला में लिखा है कि १३६ राजा उसके चरण कमलों की सेवा करते थे। चन्देल राजा कीर्तिवर्मन वाली घटना उसकी वृद्धाव था में हुई थी। कर्ण १०४१ में त्रिपुरी के सिंहासन पर आसीन हुआ था और यह घटना १०७१ ७२ की है। यद्यपि इससे कलचुरि नरेश महानबलवान कर्ण की मर्यादा में कोई अन्तर नहीं आया था, क्योंकि तत्काल ही कर्ण के महाबलवान् पुत्र यश कर्ण ने चन्देल राजा कीर्तिवर्मन के गर्व का पराभव किया था तथापि चन्देलराज कीर्तिवर्मन ने अपनी जीत की इस खुशी मे प्रबोध चन्द्रोदय नाटक की रचना करा डाली। इस नाटक में उसने कीर्तिवर्मन उपनाम चन्द्र चन्देल की जीत और कर्ण की हार दिखलाई।

कर्ण जहाँ बलवान् और नीति निपुण और दानी था, वहाँ वह [विद्]याप्रेमी भी था। विद्यापति जैसा महाकवि उसके दरबार की [स]भा में योग देता था। एक दिन उसने एक दूत मालवाधिपति भोज [के] दरबार में भेजा और कहलाया-"आपकी नगरी में १०४ महल [आ]पके बनवाये हुए हैं, तथा इतने ही आपके गीत प्रबन्ध आदि और इतनी ही आपकी उपाधियाँ हैं। इसलिये या तो युद्ध में, [श]ास्त्रार्थ में, अथवा दान में, आप मुझको जीत कर एक सौ पाँचवीं [उपा]धि को धारण कर, नहीं तो आपको जीतकर मैं १३७ राजाओं

का राजा कहलाऊँ।" महाबलवान् काशिराज कर्ण का यह सन्देश सुन, भोज का मुख मलीन हो गया। अन्त में भोज के बहुत कहने सुनने से उन दोनों के बीच यह बात ठहरी कि, दोनों राजा अपने राज्य में एक ही समय में एक ही तरह के महल बनवाना प्रारम्भ करें, जिसका महल पहले बन जाय वह दूसरे पर अधिकार कर ले। कर्ण ने काशी में और भोज ने उज्जैन में महल बनवाने आरम्भ किये। कर्ण का महल पहले बनकर तैयार हो गया। परन्तु भोज ने पहले की की हुई प्रतिज्ञा भंग कर दी। इस पर अपने सामन्तों सहित कर्ण ने भोज पर चढ़ाई की। कहते हैं, भोज का आधा राज्य देने की शर्त पर उसने गुजरात के राजा भीम को भी अपने साथ कर लिया। दोनों ने मिल कर मालवे की राजधानी उज्जैन को घेर लिया। उसी अवसर पर ज्वर से भोज का प्राणान्त हो गया। यह समाचार सुन कर कलचुरि नरेश कर्ण ने किले को तोड़ कर भोज का सारा कोष लूट लिया। यह देख कर भीम ने अपने सांधिविग्रहिक मन्त्री डामर को आज्ञा दी कि, "या तो भीम (उसके हक) का आधा राज्य या कर्ण का सिर ले आओ।" यह सुन कर दोपहर के समय डामर बत्तीस पैदल-सिपाहियों सहित कर्ण के खेमे में पहुँचा और सोते हुए उसको घेर लिया। तब कर्ण ने एक तरफ़ सुवर्ण मण्डपिका, नीलकण्ठ, चिन्तामणि, गणपति आदि देवता और दूसरी तरफ भोज के राज्य की समग्र समृद्धि रख दी। फिर डामर से कहा—"इसमें से चाहे जौन सा एक भाग ले लो।" यह सुन सोलह पहर के बाद भीम की आज्ञा से डामर ने देव मूर्तियों वाला भाग ले लिया।"[१]

भारत के प्राचीन राजवंश के लेखक पृ० ४८ पर लिखते हैं—

---

[१] कर्ण काशी का ही नहीं, अपितु भारत का सम्राट् था और इसी-लिये उसे गुजरात का भी राजा लिखा गया है।

"पूर्वोक्त वृत्तान्त से भोज पर कर्ण का हमला करना, उसी समय ज्वर से भोज की मृत्यु का होना, तथा उसकी राजधानी का कर्ण द्वारा लूटा जाना प्रकट होता है।

"नागपुर से मिले हुए परमार राजा लक्ष्मणदेव के लेख से भी उपरोक्त बात की सत्यता मालूम होती है। उसमें लिखा है कि भोज के मरने पर उसके राज्य पर विपत्ति छागई थी। उस विपत्ति को भोज के कुटुम्बी उदयादित्य ने दूर किया। तथा कर्णाटक वालों से मिले हुए राजा कर्ण से अपना राज्य पुनः छीना।"

प्राचीन राजवंश के लेखक आगे लिखते हैं—"उदयपुर (ग्वालियर) के लेख से भी यही बात प्रकट होती है।

हेमचन्द्र सूरि ने अपने बनाए द्वय आश्रय काव्य के ६वें सर्ग में लिखा है कि— "सिन्ध के राजा को जीत कर भीमदेव ने चेदिराज कर्ण पर चढ़ाई की। प्रथम भीमदेव ने अपने दामोदर नामक दूत को कर्ण की सभा में भेजा। उसने वहाँ पहुँच कर के कर्ण की वीरता की प्रशंसा की और निवेदन किया कि राजा भीम यह जानना चाहता है कि आप हमारे मित्र हैं या शत्रु? यह सुन कर कर्ण ने उत्तर दिया—सत्पुरुषों की मैत्री तो स्वाभाविक होती ही है। इस पर भी भीम के यहाँ आने की बात सुनकर मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ हूँ। तुम मेरी तरफ से ये हाथी, घोड़े और सोने की सुवर्ण मण्डपिका ले जाकर भीम के भेंट करना और साथ ही यह भी कहना कि वे मुझे अपना मित्र समझें।"

पृथ्वीराज चरित श्लोक ७२ के आधार पर भारत के प्राचीन राजवंश के लेखक श्री विश्वेश्वर नाथ रेउ पृष्ठ १३१ पर लिखते हैं कि "साँभर के चौहान राजा दुर्लभ (तीसरे) से घोड़े प्राप्त करके मालवे के राजा उदयादित्य ने गुजरात के राजा कर्ण को जीता। इससे अनुमान होता है कि भोज का बदला लेने ही के

लिये उदयादित्य ने यह चढ़ाई की होगी। गुजरात के इतिहास लेखकों ने इस चढ़ाई का वर्णन नहीं किया, परन्तु इसकी सत्यता में कुछ भी सन्देह नहीं है।"

इस उद्धरण से यह बात अत्यन्त स्पष्ट हो जाती है कि गुजरात का राजा भीम कलचुरि कर्ण का अधीनस्थ राजा था: युद्धक्षेत्र के खेमे में अपने सान्धि विग्रहिक डामर द्वारा जब उसने कर्ण को घेर लिया और उससे केवल देवताओं की मूर्तियाँ प्राप्त कर सन्तुष्ट हो गया तो यह समझ पड़ता है कि उससे कर्ण का इस तरह का कोई समझौता नहीं हुआ था। भोज की कर्ण द्वारा लूटी गई सम्पत्ति देखकर उसके मुँह में पानी आ गया होगा। इसीलिये उसने छल का व्यवहार किया था। और स्वयं न जाकर उसने डामर को भेजा था, जिसने सोते हुए कर्ण को घेर लिया था जो नितान्त हीनता का सूचक है। ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि कर्ण ने देवी देवताओं को बीच में रखकर निश्चय ही उसे सत्य मार्ग पर आने के लिये विवश किया है। परन्तु हेमचन्द्र सूरि का उपरोक्त उद्धरण घटना का विवरण और ही प्रकार से देता है। इससे समझ पड़ता है, बातें गढ़ी गई हैं।

काश्मीर के बिल्हण कवि ने अपने रचे विक्रमांकदेव चरित काव्य में चेदि के राजा कर्ण का कलिञ्जर के राजा के लिये कलिरूप होना लिखा है।*

प्रबोध चन्द्रोदय नाटक से पाया जाता है कि, चेदि के राजा कर्ण ने, कलिजर के राजा कीर्तिवर्मा का राज्य छीन लिया था। परन्तु कीर्तिवर्मा के मित्र सेनापति गोपाल ने कर्ण के सैन्य को परास्त कर पीछे उसे कलिंजर का राजा बना दिया। बिल्हण

---

* विक्रमांकदेव चरित, सर्ग १८ श्लोक ९६।

कवि के लेखसे पाया जाता है कि पश्चिमी चालुक्य राजा सोमेश्वर प्रथम ने कर्ण को हराया।

आचार्य दीपाङ्कर श्री ज्ञान, जिसका दूसरा नाम अतिशा था, जो पालवंशी राजा नयपाल का समकालीन था। इसआचार्य के एक शिष्य के लेख से प्रकट होता है कि पश्चिम की तरफ से राजा कर्ण ने मगध पर चढ़ाई की थी। यद्यपि मूल में कर्ण्य लिखा है तथापि शुद्ध पाठ कर्ण ही उचित प्रतीत होता है, क्योंकि हैहयों के लेखों से सिद्ध है कि चेदि के राजा कर्ण ने बंग-देशपर चढ़ाई की थी। नयपाल के पुत्र विग्रहपाल (तीसरे) की कर्ण पर की गई चढ़ाई सम्भवत पिता के समय का बदला लेने के लिये ही विग्रहपाल ने की होगी। उस चढाई के समय आचार्य दीपङ्कर वज्रासन (बुद्ध गया अथवा विहार) में रहता था। युद्ध में यद्यपि पहले कर्ण विजयी हुआ। उसने कई नगरों पर अपना अधिकार कर लिया, यद्यपि अन्त में, उसे नयपाल से हार माननी पड़ी। उस समय उक्त आचार्य ने बीच में पड़कर उन दोनों में आपस में सन्धि करवा दी। (भा० प्रा० रा० प्र० भा० पृ० १९०१९१)

ऊपर लिखे अनेक उद्धरण जो काशिराज कर्ण के सम्बन्ध में भारत के प्राचीन राजवंश (प्रथम भाग के अनेक पृष्ठों) से यहाँ लिये गये हैं, वे यह तो स्पष्ट ही करते हैं कि कर्ण की अनेक देशी राजाओं से लगातार लड़ाइयाँ हुई थीं। बंगाल से लेकर गुजरात तक और काँगड़ा से लेकर मद्रास तक कोई भी नरेश ऐसा न बचा था, जिसके ऊपर उसने अपनी तलवार की चोट न की हो और स्वयं उसके तलवार की चोट न खाई हो। जगत का एक मात्र सम्राट् सिंह भी बिना किसी त्याग के उस पद को नहीं प्राप्त कर पाता। फिर इस स्थान पर यह अत्यन्त

विचारणीय बात है कि प्रबन्ध चिन्तामणि की बात सत्य है अथवा हेमचन्द्र सूरि के द्व्य-आश्रय काव्य की ?

हाँ, यह बहुत स्वाभाविक प्रतीत होता है कि भीम और कर्ण ने परस्पर भोज की समग्र समृद्धि को बाँट लेने का पहले ही निश्चय कर लिया हो और कर्ण ने भोज की समृद्धि हस्तगत कर लेने पर अपने बल के भरोसे उसे देने से इनकार किया हो तब भीम ने छलसे अपने सांधिविग्रहिक मंत्री डामर को उसके खेमे को घेर लेने और अपने हिस्से का आधा राज्य या कर्ण का सिर ले आने का आदेश किया हो। इस आधार पर प्रबंध चिन्तामणि की बात तत्व रखती है; किन्तु मुझे इसमें भी सन्देह है। महाप्रतापी कर्ण का खेमा क्या उसके सैन्यदल से बहुत दूर जङ्गल में लगा था, जहाँ उसकी सहायता के लिये उसके सेनापति आदि नहीं पहुँच सके थे ?

भारत के प्राचीन राजवंश के लेखक लिखते हैं कि "हेमचन्द्र ने गुजरात के सोलंकी राजाओं का महत्त्व प्रकट करने के लिए ऐसी ऐसी अनेक कथाएँ लिख दी हैं, जिनका अन्य प्रमाणों से कल्पित होना सिद्ध हो चुका है।"

इसी प्रकार कवियों की कल्पनाओं में अतिशयोक्तियों का बाहुल्य प्रायः पाया जाता है। कवि की रचना ऐतिहासिक होते हुए भी कल्पनाओं का अवश्यमेव सहारा लेती है। कल्पनाओं का अतिरंजन ही काव्य में आकर्षण उत्पन्न करता है अतएव कर्ण के सम्बन्ध में यत्र-तत्र प्राप्त ऐसी बातें जो उसके पराक्रम और महत्व पर कालिख पोतती हों वह ग्रहण योग्य नहीं हैं। भेड़ाघाट के लेख के बारहवें श्लोक में कर्ण के प्रताप का इस प्रकार वर्णन है :—

" पांड्यश्चण्डिमतामुमोच मुरलस्तत्याज गर्व्व (ग्र)हं।
(कुं)ङ्गः सद्गतिमाजगाम चकपे वङ्गः कलिङ्गैः सह॥

कीर कीरवटासपञ्जरगृहे हूण ७७ प्रहर्ष जहौ ।
यस्मिन्राजनि शौर्य विभ्रमभर बिभ्रत्यपूर्वप्रभे ॥

अर्थात्—कर्णदेव के प्रताप और विक्रम के सामने पाण्ड्य देश राजा ने उग्रता छोड दी, मुरलो ने गर्व छोड़ दिया, कुर्गो ने सीधी चाल ग्रहण की, बग और कलिङ्ग देशवाले कॉप गये, कीर वाले पिंजड़े के तोते की तरह चुपचाप बैठ रहे और हूणों ने हर्ष मनाना छोड़ दिया ।

कर्ण बेल के लेख में लिखा है कि चोड, कुग, हूण, गौड, गुर्जर और कीर के राजा उसकी सेवा में रहा करते थे ।

पाण्ड्य और चोल मद्रास प्रान्त मे राज्य करते थे । ये इतने प्रतापी थे कि इनका राज्य महाप्रतापी महाराजा अशोक के राज्य में सम्मिलित नहीं हो सका था । मुरल, केरल वर्तमान मालाबार मैं राज्य करते थे । कीर काश्मीर के कागडा प्रा त के निवासी थे। और गौड़ पूर्वीय भारतवर्ष का भाग था, जिसको अब बगाल कहते हैं । कलिंग उडीसा का एक नाम था, यहीं पर त्रिकलिंग था, जिसको विजय कर कलचुरि सम्राटों का एक विरुद त्रिकलिंगाधिपति हो गया था । गुर्जर गुजरात का नाम है । कुगदेश वह है, जिसके नाम से कोयम्बतूर प्रसिद्ध है । इसमें वर्तमान सलेम और कोयम्बतूर जिले शामिल थे । हूण लोग मध्य एशिया से आए थे और मध्यभारत तक अपना अधिकार जमा लिया था। इन हूणों ने योरप तक अपना आतक जमाया था, परन्तु हमारे जुझार कर्ण ने इन्हें ऐसा धर दबोचा था कि इनके सटक्के टर गये । यही नहीं, हूणों पर विजय कर कर्ण ने हूण जाति की ही कन्या आवल्लदेवी से विवाह किया था । इस कन्या और कर्ण के औरस से यश कर्णदेव का जन्म हुआ था ।

कर्णदेव शैव था कदाचित् इसी कारण से या शिवपुरी की महत्ता से प्रेरित हो उसने काशी को अपनी राजधानी बनाने

विचार किया था। उसने वहाँ एक विशाल मन्दिर भी बनवाया था जो कर्णमेरु के नाम से प्रसिद्ध था। वह बारह मंजिला और आकार षटकोण था। उसकी समानता का दूसरा शिवालय या प्रासाद कहीं पर नहीं था। कर्ण ने सब कुछ किया, परन्तु अन्त में त्रिपुरी से राजधानी हटाने का साहस न कर सका। इसीलिये काशी भारत के एक बड़े साम्राज्य का केन्द्र होते होते रह गई।

चेदि सवत् ७९३ (वि० सं० १०९८) १०४१ ई० का एक दानपत्र कर्ण का और चेदि स्वत् ८६४ (वि०सं०११६९) १११२ ई० का उसके पुत्र यशःकर्णदेव का मिला है। इन दोनों के बीच २७ वर्ष का अन्तर आता है। इससे समझ पड़ता है कि कर्ण देव ने एक लम्बे समय तक राज्य किया था। इस आधार पर भारत के प्राचीन राजवंश के लेखक प्रथम भाग पृ० ५० पर लिखते हैं कि—कर्णदेव के मरने के बाद उसके राज्य में झगड़ा पैदा हुआ। उस समय कन्नौज पर चन्द्रदेव ने अधिकार कर लिया।"

भारत के प्राचीन राजवंश भाग ३ पृ० ९७ पर कन्नौज के गहड़वालों के इतिहास में लिखा है:—

'मालवा के परमार राजा भोज और चेदि के कलचुरि (हैहय वंशी) राजा कर्ण के मरने से उत्पन्न हुई अराजकता को (इसने = चन्द्रदेव ने) दबा दिया था।" यह बात चन्द्रदेव के वि० सं० ११६१ (ई० सन् ११०४) के प्राप्त एक ताम्रपत्र के आधार पर लिखी गई है जो बसाही में मिली है। जिसमें लिखा है:—

> याते श्री भोज भूपे विधवरवधू नेत्रसीमातिथित्वं।
> श्री कर्णे कीर्तिशेष गतवति च नृपेक्ष्मात्यये जायमाने।
> भर्तारं यं व (ध) रित्री त्रिदिव विभुनिभं प्रीतियोगा दुपेता।
> त्राता विश्वासपूर्वं समभवदिहसद्मा पतिश्चन्द्रदेवः।

अर्थात् —भोज और तत्पश्चात् कर्ण के करने पर उत्पन्न हुई गडबड़ से दुःखित हुई पृथ्वी चन्द्रदेव की शरण में गई।

इतिहास प्रवेश पृष्ठ १८६ पर श्री जयचन्द्र विद्यालंकार जी लिखते हैं—" तब भोज के वंशज उदयादित्य ने भी मालवा राज्य का पुनरुद्धार किया।"

मालवा राज्य के पुनरुद्धार का समय इतिहास प्रवेश के आधार पर १०५९ ई० के उपरान्त निश्चित होता है। और चन्द्रदेव गाहडवाल का कन्नौज पर अधिकार करने का समय १०८० ई०। लगभग यही समय कर्णदेव की अत्यन्त वृद्ध अवस्था का है।

मद्रास का चोल राजा राजेन्द्र गंगेकोंड का दोहिता वेंगि का राजकुमार ठीक इसी समय ताजोर की गद्दी पर कुलोत्तुंग नाम से बैठा। इसके कारण वेंगि का चालुक्य और ताजोर का चोल राज्य मिल कर एक हो गये। ठीक इसी समय उड़ीसा में राजेन्द्र गंगेकोंड का दूसरा दोहिता अनन्तवर्मा राज करता था। इस सम्बन्ध से चोल राज्य भी शक्ति सम्पन्न हो गया।

इन्हीं दिनों कर्णाटक भी बढ़ा। यद्यपि चोल राजाओं ने कर्णाटक राज्य का बहुत अहित किया था, किन्तु फिर भी उसमें जान थी। सोमेश्वर का बेटा विक्रमांक चालुक्य (१०७७ ई०) अपने पिता से भी अधिक प्रतापी निकला और उसके समय में कर्णाटक की तूती फिर बज उठी। १०८० ई० के करीब विजयसेन और नान्यदेव नामक दो कनाड़े सैनिकों ने पाल राजाओं से बंगाल और तिरहुत छीन कर दो नये राज्य स्थापित कर दिये। कर्णाटक का प्रभाव बढ़ गया। सुदूर काश्मीर में विक्रम चालुक्य का समकालीन राजा हर्ष (१०८६ ११०१अपने) दरबार में कर्णाटक की ही चाल ढाल का नकल करता था। विजयसेन ने पाल राजा से मगध भी लेना चाहा। साथ ही तिरहुत पर भी अधि -

कार जमाना चाहा। परन्तु इन दोनों राज्यों ने चन्द्रदेव गाहड़वाल से रक्षा पाई।

गुजरात के अनहिलवाड़े में इसी समय सिद्धराज जयसिंह हुआ। इसने लगातार १८ वर्ष तक मालवा के उस भाग के लिये लड़ाई लड़ी और अन्त में उसे जीत ही लिया, जो गुजरात से मिला हुआ था। सोमनाथ का मन्दिर इसी समय पत्थरों से निर्मित हुआ।

सिद्धराज जयसिंह का पड़ोसी और समकालीन चौहान अजयराज और आना थे। अजयराज ने अजमेर बसाकर साँभर के बजाय उसे राजधानी बनाया। उसके बेटे आना को सिद्धराज ने पहले तो हराया, फिर पीछे अपनी लड़की कांचनदेवी को उससे ब्याह दी। आना की पहली रानी से विग्रहराज और कांचनदेवी से सोमेश्वर पैदा हुआ। विग्रहराज ने ११५० ई० के करीब हाँसी और दिल्ली जीतकर अजमेर राज्य में मिला लिया।

इसतरह हम देखते हैं कि सर्वविजयी कलचुरि कर्ण का स्थापित साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया। यद्यपि उसका पुत्र यशःकर्णदेव पराक्रमहीन नहीं था। उसने अपने पिता से उत्तराधिकार में प्राप्त राज्य की रक्षा के लिये कुछ उठा नहीं रक्खा, परन्तु वह पराजित राजाओं के विद्रोह के प्रवाह को नहीं रोक सका। विद्रोह दक्षिण के आंध्र देश से आरम्भ हुआ। यद्यपि यशःकर्ण ने वहाँ के राजाओं को बेतरह पछाड़ा, परन्तु वह उत्तर के विद्रोहियों से पार न पा सका। पराजित राजाओं में विद्रोह की जो अग्नि कर्णदेव के अन्तिम समय मे भड़की वह बढ़ती ही गई। कर्णदेव की मृत्यु के उपरान्त तो उसने भयानक रूप धारण किया।

श्री हीरालाल जी लिखते हैं कि "कन्नोज के गहरवारों ने कलचुरियों को काशी और मगध से भी निकाल बाहर किया।

परन्तु यश कर्ण हिम्मत नहीं हारा। उसने चढाई करके काशी को फिर अपने अधिकार में कर लिया। और आगे बढ कर मगध राज्य के एक भाग चम्पारन *को लूट पाटकर मटियामेट कर दिया। इसके बाद वह दक्षिणाभिमुख हुआ। गोदावरी के समीप उसने आंध्र देश के राजा को हराया। इस विजय की खुशी में उसने भीमेश्वर महादेव को बहुत से आभूषण अर्पण किये। यह भीमेश्वर महादेव गोदावरी जिले के दक्षाराम स्थान में हैं।

श्री हीरालालजी लिखते हैं—"यश कर्ण देव की वृद्धावस्था के समय काशी फिर उसके हाथ से निकल गई और मिथिला से त्रिपुरी का सम्बंध सदैव के लिये टूट गया। मगध इन दिनों पाल राजाओं के अधिकार में था। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका, है पाल नरेश कन्नौज के गहरवारों से भारी सहायता पा रहे थे।

इपिग्राफिका इंडिका जिल्द १८ पृ० १८८ के आधार पर भारत के प्राचीन राजवंश के लेखक लिखते हैं कि—"वि० सम्वत् ११६१ सन् ई० ११०४ के परमार राजा लक्ष्मदेव ने त्रिपुरी पर चढ़ाई करके उसको नष्ट कर दिया।"

यद्यपि इस लेख में त्रिपुरी के राजा का नाम नहीं लिखा है तथापि यह चढ़ाई यश कर्ण देव के ही समय हुई हो तो कोई आश्चर्य नहीं। क्योंकि वि० स० ११५४ सन् ई० १०९७ के पूर्व ही कर्ण देव का देहान्त हो चुका था और यशःकर्ण देव वि० स० ११७६ सन् ई० ११२२ के पीछे तक विद्यमान था।

यश कर्ण के समय चेदिराज्य का कुछ हिस्सा कन्नौज के राठौड़ों ने दबा लिया था। वि० स० ११८७ के राठौड़ गोविन्दचन्द्र के दानपत्र में लिखा है कि यश कर्ण ने जो गाँव रुद्रशिव

*भेड़ाघाट के लेख में यश कर्ण का चम्पारन को नष्ट करना लिखा है। भारत के प्राचीन राजवंश पृ० ५०।

को दिया था वही गाँव इसने गोविन्दचन्द्र की अनुमति से एक पुरुष को दे दिया।

चेदि सं० ८७४ ( वि० सं० ११७६ ) एक ताम्रपत्र यशःकर्णदेव का मिला है। इसका उत्तराधिकारी इसका पुत्र गयकर्णदेव हुआ। "यशःकर्ण की माता का नाम अल्हणदेवी था। अल्हणदेवी का एक लेख भेड़घाट में मिला था, जो अब अमेरिका के न्यूहेवन नामक नगर में पहुँच गया है। यह ११५५ ई० का लेख है। इसमें नर्मदा के तटस्थ दो ग्रामों के दान की चर्चा है, जो मठ, बगीचा और पाठशाला चलाने के लिये दिये गये थे। इनमें से एक गाँव जावली पत्तल के अन्तर्गत था, जो जबलपुर का पुराना नाम जान पड़ता है। यशःकर्ण के ताम्रशासन में जावली पत्तल लिखा मिलता है (है० क्ष० मित्र जनवरी १६२५ रा० ब० हीरालाल लिखित जबलपुर जिले का इतिहास" "शर्पकि" पृ० ३८)

## १२—गयकर्णदेव

गयकर्णदेव अपने पिता के पीछे गद्दी पर बैठा। इसका विवाह मेवाड़ के गुहिल राजा विजयसिंह की कन्या आल्हणदेवी से हुआ था। यह विजयसिंह वैरिसिंह का पुत्र और हंसपाल का पौत्र था। आल्हणदेवी की माता का नाम श्यामला देवी था। वह मालवे के परमार राजा उदयादित्य की पुत्री थी। अल्हणदेवी से दो पुत्र हुये। नरसिंहदेव और उदयसिंहदेव। ये दोनों अपने पिता गयकर्णदेव के पीछे क्रमशः गद्दी पर बैठे।

चेदि सं० ९०२ ( वि० सं० १२०८ ) का एक शिलालेख गयकर्णदेव का त्रिपुरी से मिला है।

चेदि सं० ९०७ ( वि० सं० १२१२ ) में नरसिंहदेव के राज्य समय में उसकी माता आल्हणदेवी ने एक शिवमन्दिर बनवाया।

उसमें बाग, मठ और व्याख्यानशाला भी थी। वह मन्दिर उसने लाटवंश के शैव साधु रुद्रशिव को दे दिया। साथ ही इस मन्दिर के निर्वाहार्थ दो गाँव भी दिये।

गयकर्णदेव का उत्तराधिकारी नरसिंहदेव के चेदि सं० ६०७ (वि० सं० १२१२) के लेख से यह प्रकट होता है कि गयकर्णदेव की मृत्यु वि० सं० १२०८ और १२१२ के बीच हुई होगी।

गयकर्णदेव जब त्रिपुरी की गद्दी पर बैठा, उस समय तक त्रिपुरी निस्तेज हो चुकी थी। अणहिलवाड़ा (गुजरात) का राज्य त्रिपुरी के प्रभाव से मुक्त हो चुका था। चौलुक्य सिद्धराज जयसिंह (१०६३ ११४२ ई०) और उसका पुत्र कुमारपाल (११४२ ७३ ई०) नाम के दोनों प्रतापी और योग्य राजाओं ने इस बीच पर्याप्त शक्ति संचित की थी। गुजरात बढ रहा था और अजमेर में सिद्धराज का दामाद विग्रहराज उपनाम बीसलदेव। इसी बीसलदेव ने ११५० ई० के लगभग हाँसी, और दिल्ली को जीतकर अजमेर में मिला लिया था। इस दिल्ली का निर्माण लगभग १०० वर्ष पहले ही अनगपाल नामक एक तोमर वंशी सरदार ने की थी। शक्तिशाली त्रिपुरी का अवसान होता हुआ देख तुर्क पंजाब से धीरे धीरे दिल्ली तक बढ आये थे। विग्रहराज ने तुर्कों को मार भगाया। दिल्ली तुर्कों से खाली हो गई। राजपूताने पर विग्रहराज का आतंक छा गया।

कन्नौज के गाहड़वाल वंश में चन्द्र गाहडवाल का पौत्र गोविन्द्रचन्द्र (१११५—११५४ ई०) भी प्रतापी राजा था। इसने भी कन्नौज राज्य का विस्तार किया था। जिस समय विग्रहराज चौहान हाँसी और दिल्ली को जीत रहा था उसी समय चेदि नरेश गयकर्णदेव बंगाल के राजा विजयसेन के पौत्र लक्ष्मणसेन (१११६ ११५० ई०) से मिलकर काशी राज्य को अपने अधीन रखने की कोशिश कर रहा था। किन्तु गोविन्दचन्द्र ने युद्ध

( ११४५ ई० ) में इन दोनों को परास्त किया और मुंगेर तक अपने अधिकार को स्थापित किया।

ठीक इसी समय देवगिरि में यादवों और ओरंगल में काकतीयों ने भी सिर उठाया। दक्षिण का चालुक्य वंश इस समय बिलकुल निर्बल हो गया था। इसलिये यादवों और काकतीयों को अच्छा सुअवसर हाथ लगा। इसी बीच गयकर्ण-देव की मृत्यु हुई।

## २३—नरसिंहदेव

नरसिंहदेव गयकर्णदेव का ज्येष्ठ पुत्र था। चेदि सं० ९०८ ( वि० सं० १२०८ ) के पूर्व ही यह अपने पिता द्वारा युवराज बनाया गया था। परन्तु जब यह राजा हुआ तब तक त्रिपुरी की दशा बहुत क्षीण हो चुकी थी पड़ोस में ही चन्देल थे। जो कल-चुरियों के पुराने वैरी थे। कलचुरियों को दुर्बल देख उन्होंने भी लड़ाई ठान दी। नरसिंह देव को हरा कर चेदि राज्य का बहुत कुछ भाग हड़प गये।

पृथ्वीराज विजय महाकाव्य में लिखा है कि 'प्रधानों द्वारा गद्दी पर बिठलाए जाने के पूर्व अजमेर के चौहान राजा पृथ्वी राजा का पिता सोमेश्वर विदेश में रहता था। सोमेश्वर को उसके मामा जयसिंह ( गुजरात के सिद्धराज जयसिंह ) ने शिक्षा दी थी। वह एक बार चेदि की राजधानी त्रिपुरी में गया, जहाँ पर उसका विवाह वहाँ के राजा की कन्या कर्पूरदेवी के साथ हुआ। उसके सोमेश्वर से दो पुत्र उत्पन्न हुए—पृथ्वीराज और हरिराज।

यद्यपि उक्त महाकाव्य में चेदि के राजा का नाम नहीं दिया है, किन्तु सोमेश्वर के राज्याभिषेक सं० १२२६ और देहान्त सं०

१२३६ को देखकर अनुमान होता है कि सभवत उपरोक्त कर्पूर-देवी नरसिहदेव की पुत्री होगी।

"जनश्रुति है कि दिल्ली के तँवर राजा अनगपाल की पुत्री से सोमेश्वर का विवाह हुआ था। उसी कन्यासे प्रसिद्ध पृथ्वीराज का जन्म हुआ और वह अपने नाना के यहाँ दिल्ली गोद गया।"

भारत के प्राचीन राजवंश के लेखक लिखते हैं कि "यह कथा निर्मूल है। क्योंकि दिल्ली का राज्य तो सोमेश्वर से भी पूर्व अजमेर के अधीन हो चुका था। तब एक सामन्त के यहाँ राजा का गोद जाना सभव नहीं हो सकता।

"ग्वालियर के तँवर राजा वीरम के दरबार में नयचन्द्र सूरि नामक कवि रहता था। उसने वि० स० १५०० के करीब हम्मीर महाकाव्य बनाया। इस काव्य में भी पृथ्वीराज के गोद जाने का कोई उल्लेख नहीं है।"

"अनुमान होता है कि शायद पृथ्वीराज रासो के रचयिता ने इस कथा की कल्पना कर ली होगी।" ( भा० के प्रा० रा० पृष्ठ ५२)

पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर चौहान की मृत्यु वि० स० १२३६ ( ई० सन् ११७६ ) में हुई थी। उस समय पृथ्वीराज बहुत छोटी आयु का था। अत राज्य का प्रबन्ध उसकी माता कर्पूर देवी ने अपने हाथ में ले लिया था। उसका मंत्री कदम्ब वासकी राज्यकार्य में उसका पर्याप्त सहायता करता था।

नरसिंहदेव के समय के तीन शिला लेख मिले हैं। उनमें से प्रथम दो चेदि स० ९०७ और ९०९ ( वि सं० १२१२ और १२१४ ) के हैं। तीसरा लेख वि० स० १२१६ का है। इससे यह अनुमान होता है कि नरसिंहदेव की मृत्यु इसके उपरान्त हुई होगी।

५

## १४—जयसिंहदेव

जयसिंहदेव नरसिंहदेव का छोटा भाई था। यह नरसिंहदेव के बाद राजा हुआ। इसकी रानी का नाम गोसलादेवी था। गोसला से विजयसिंहदेव का जन्म हुआ। इसके समय के तीन लेख मिले हैं। पहला चेदि सं० ६२६ (वि० सं० १२३२) का और दूसरा चे० सं० ६२८ (वि० सं० १२३४) का है तथा तीसरे में संवत् नहीं।

## १५—विजयसिंहदेव

यह जयसिंह का पुत्र था। अपने पिता के पीछे यह त्रिपुरी की गद्दी पर बैठा। इसका एक ताम्रपत्र चे० सं० ६३२ (वि० सं० १२३७) का मिला है। इससे अनुमान होता है कि वि० सं० १२३४ और वि० सं० १२३७ के बीच विजयसिंह का राज्याभिषेक हुआ होगा। इसके समय का दूसरा ताम्रपत्र वि० सं० १२५३ का है।

## १६—अजयसिंहदेव

अजयसिंहदेव विजयसिंहदेव का पुत्र था। चेदि सं० ९३२ (वि० सं० १२३७) के लेख से यह प्रमाणित होता है कि यह अपने पिता विजयसिंहदेव का उत्तराधिकारी था। इस राजा के बाद से इस वंश का कुछ भी हाल स्पष्ट नहीं मिलता। इसके समय तक कलचुरि राज्य का फैलाव रीवा और पन्ना तक बराबर बना रहा।

## १७ त्रैलोक्यवर्मदेव

रीवा में ककरेदी के राजाओं के चार ताम्रपत्र मिले है। उनके संवतादि इस प्रकार हैं—

२—चेदि स० ६२६ का पूर्वोक्त जयसिंह के सामन्त महाराणा कीर्तिवर्मा।

२—वि०स० १२५३ विजय (सिंह) देव के सामन्त महाराणक सलखणवर्मदेव का।

३—वि० स० १२६० का त्रैलोक्यवर्मदेव के सामन्त महाराणक कुमारपालदेव का।

४—वि० स० १२६८ का त्रैलोक्यवर्मदेव के सामन्त महाराणक हरिराजदेव का।

ऊपर उल्लिखित ताम्रपत्रों में जयसिंहदेव, विजयसिंहदेव और त्रैलोक्यवर्मदेव आदि के सम्बन्ध में इन उपाधियों को धारण करने की चर्चा हैं —

"परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर परममाहेश्वर श्रीमद्वामदेव पादानुध्यात परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर त्रिकलिंगाधिपति निजभुजोपार्जिताश्वपति गजपति नरपति राजत्रयाधिपति।"

ऊपर वर्णन किए हुये तीनों राजाओं में से जयसिंहदेव और विजयसिंहदेव को जनरल कनिंघम तथा डाक्टर कील हार्न, कलचुरिवंश के मानते हैं, परन्तु तीसरे राजा त्रैलोक्यवर्मदेव का चन्देल होना अनुमान करते हैं, परन्तु उनके साथ उपरिलिखित जो उपाधि है, वह चन्देलों की नहीं है और उनका यह अनुमान संभवतः तत्कालीन त्रैलोक्यवर्मा चन्देल को देख कर है।

भारत के प्राचीन राजवंश के लेखक प्रथम भाग पृष्ठ ५८ पर लिखते हैं कि "उपरोक्त उपाधियाँ हैहयों की ही हैं। अत जब तक उसका चंदेल होना दूसरे प्रमाणों से सिद्ध न हो तब तक उक्त यूरोपियन विद्वानों की बात पर विश्वास करना उचित नहीं है।

कलचुरि संवत् ६४८ वि० सं० १२५३ (ई०सन् ११६६) में विजयसिंहदेव विद्यमान था। हो सकता है कि इसके बाद भी वह जीवित रहा हो। उसके पीछे उसके पुत्र अजयसिंह तक का शृंखलावद्ध इतिहास मिलता जाता है। हो सकता है कि उसके पीछे वि० सं० १२६८ में त्रैलोक्यवर्मा राजा हुआ हो। उस समय देश की स्थिति बड़ी ही विचित्र थी। चारों ओर युद्ध की ज्वाला जल रही थी। चण्डिका का नग्न तांडव रात-दिन बराबर हो रहा था। बंगाल की खाड़ी से लेकर अरब समुद्र पर्यन्त और कन्या कुमारी से लेकर काश्मीर तक युद्ध की भयानक विभीषिका फैली हुई थी। नित्य नये राज्य स्थापित हो रहे थे और पुराने टूट रहे थे।

१०२१ ई० में प्रसिद्ध सोमनाथ के मन्दिर को तोड़ने और लूटने वाला महमूद गजनवी का वंशज वहराम ११५१ ई० में गजनी में राज्य कर रहा था। गजनी से हरात के रास्ते में फरारूद नदी की दून में गोर नाम का एक छोटा सा प्रदेश है। यहाँ के पठान सरदार अलाउद्दीन ने महमूद के वंशज वहराम को हराकर गजनी से भगा दिया। फिर उसके वेटे खुसरो (११५२—६०) के समय में गजनी को सात दिन तक लूटा और जलाकर खाक कर दिया। अलाउद्दीन का भतीजा शहाबुद्दीन भारतीय इतिहास में शहाबुद्दीन गोरी कर के वहुत प्रसिद्ध है। उसने हिन्दुस्तान जीतने का संकल्प किया। वुलन्द हिम्मत और न घबराने वाला शहाबुद्दीन ने ११७७ ई० मे गजनी को जीत कर हिन्दुस्तान की ओर कदम उठाया।

हिन्दुस्तान में कदम रख कर उसने सबसे पहले उच्च के महाराजा से सन्धि की। पीछे फिर उसने उसकी रानी को मिला कर उस राज्य को जीत लिया। इसके वाद मुलतान और सिन्ध भी विजय किया। ११७८ ई० में उसने गुजरात पर भी चढ़ाई की।

यहाँ का राजा मूलराज सोलंखी (चालुक्य) द्वितीय अभी छोटा था, अत उसकी माँ ने आबू के नीचे कायद्राँ गाँव पर उसका मुकाबला किया। गोरी बुरी तरह हार कर भाग गया। उसकी फौज का बडा भाग क़ैद हो गया। क़ैदी हिंदू बन कर धीरे धीरे गुजरातियों में ही मिल गये।

शहाबुद्दीन ने फिर इधर की ओर मुख नहीं किया और दिल्ली की ओर बढा। उसने ११८५-८६ ई० में पंजाब पर अधिकार कर लिया। पृथ्वीराज चौहान जो उन दिनों दिल्ली का शासक था। जो कलचुरि वंशीय महाराज नरसिंहदेव का नाती और विजय सिंह देव का भाञ्जा था। जिसने मालवा के परमारों, जमौती के चन्देलों और कन्नौज के गाहड्वालों को युद्ध में पराजित कर अपनी शक्ति का विकास किया था, शहाबुद्दीन के मुकाबले के लिये आगे बढ़ा। पानीपत के पास तरावड़ी में उसने शहाबुद्दीन को गहरा चोट दी। शहाबुद्दीन घायल होकर भाग गया। ११६१ ई० में पृथ्वीराज ने पंजाब का सरहिन्द प्रान्त भी ले लिया। ११६२ में शहाबुद्दीन फिर चढा। इस बार पृथ्वीराज कैद हो कर मारा गया। शहाबुद्दीन ने दिल्ली के प्रान्त पर कुतुबुद्दीन ऐबक को और अजमेर के इलाके पर पृथ्वीराज के पुत्र गोविन्दराज को अपना सामन्त नियत किया। कन्नौज का राज्य तुर्क राज्य का पड़ोसी हो गया।

११६४ ई० में शहाबुद्दीन ने कन्नौज पर चढाई की। कन्नौज का राजा जयचन्द्र इटावा के पास चन्दावर पर लड़ता हुआ मारा गया। उसके बेटे हरिश्चन्द्र ने लड़ाई जारी रक्खी और जब तक जिया कन्नौज के किले पर शहाबुद्दीन का हाथ न लगने दिया।

११६५ ई० में पृथ्वीराज के भाई हरिराज ने चम्बल नदी के किनारे रणथम्भोर में चौहानों की नई राजधानी स्थापित की।

अजमेर के साथ उत्तरी मारवाड़ भी मुसलमानों के हाथ चला गया किन्तु—जालोर—दक्षिणी मारवाड़ चौहानों के पास रहा।

११९७ तक कन्नौज और चुनार तक का प्रान्त कन्नौज के सामन्तों से उसने ले लिया, जिसे उसने मुस्लिम अमीरों में बाँट कर स्थान स्थान पर मुस्लिम नवाबों के केन्द्र बना दिये। चुनार का शासन मुहम्मद बिन बख्त्यार के हाथों पड़ा। उसने मगध (वर्तमान बिहार प्रान्त) पर हमले शुरू किये। राजा गोविन्दपाल हार गया। मुहम्मद बिन बख्त्यार ने गौड़ पर चढ़ाई की। राजधानी लखनौति उसके अधिकार में आ गई। लक्ष्मणसेन के बेटे केशवसेन और विश्वरूपसेन उससे बराबर लड़ते रहे। उन्होंने वर्तमान ढाका के पास सुवर्ण ग्राम (सोनार गाँव) को अपनी राजधानी बनाया और उसके बाद सवा सौ वर्ष तक सोनार गाँव सेन राजाओं की राजधनी रहा।

अवध और कन्नौज पर अधिकार कर कुतुबुद्दीन ऐबक ने चन्देलो पर चढ़ाई की। १२०२ में उसने कालिंजर का गढ़ छीन लिया। परन्तु उसके मुँह फेरते ही चन्देल फिर उभड़े।

चन्देलों का उदय छतरपुर राज्य मे नवीं शताब्दी के लगभग हुआ था। इस वंश का तीसरा राजा जयशक्ति या जेजा हुआ, जिसके नाम से वह प्रान्त जेजाभुक्ति या जझौती कहलाने लगा। जझौती का विस्तार गंगा जमुना से लगा कर नर्मदा तक और बेतवा से मिर्जापुर के निकट विन्ध्यवासिनी के मन्दिर तक बतलाया जाता है। कलचुरियों के जमाने में चन्देलों का राज्य अपने देश में अच्छा रहा। कलचुरि कर्ण के बाद चन्देल कीर्तिवर्मा ने इस राज्य को बढ़ाया था।

कलचुरि-सूर्य के मध्याह्न के समय चन्देल प्रबल हो उठे। चन्देल राज्य धीरे धीरे ऊपर उठा। त्रिपुरी साम्राज्य का उत्तर पूरबी प्रदेश जिसमें रीवा, कोठी, नागोद, सोहावल, मैहर आदि

रियासतें आज कल स्थित हैं—कलचुरियों से चन्देलों ने छीन कर अपना अधिकार जमा लिया।

कुतुबुद्दीन ने जिस कालिंजर के किले को चन्देलो से छीना था, वह उसके अधिकार में नहीं रहने पाया। चन्देला ने उसे फिर तुर्कों से छीन लिया। परन्तु चन्देल कालपी का प्रदेश न ले सके।

इल्तुतमिश कुतुबुद्दीन ऐबक का दामाद था। इसने उसके मरने के बाद उसके बेटे आरामशाह को गद्दी से उतार स्वयं दिल्ली का सुलतान बन बैठा। इसने कन्नौज के रहे सहे गाहडवालों को परास्त किया और उत्तर भारत के सारे तुर्क प्रान्तों को एक शासन में जोड़ कर पडोसी राजपूतों के राज्यों की ओर ध्यान दिया उसने (१२३३ ३४ ई० में) रणथम्भोर और ग्वालियर पर अधिकार किया और परमर्दी चन्देल के बेटे त्रैलोक्यवर्मा पर चढ़ाई की। जझौती को अच्छी तरह लूटा। इसके बाद वह मालवा की ओर बढ़ा। परमार राज्य की राजधानी उज्जैन और भेलसा भी लूटा गया। उज्जैन के महाकाल मन्दिर को तोड कर नागदा को भी लूटा और वह गुजरात की ओर बढ़ा। रास्ते में उसने मेवाड़ की राजधानी को उजाड डाला। इसके बाद वह लौट कर १२३६ ई० में मर गया। इसका बेटी रजिया शासिका बनी, परन्तु विद्रोह को दबाते समय १२४० में मारी गई।

भारत के मुस्लिम साम्राज्य में विद्रोह की जो अग्नि धधकी वह बंगाल, मुलतान, सिन्ध, बिहार, पंजाब और युक्त प्रान्त सभी जगह फैल गई। अलवर के मेवातियों ने दिल्ली के मुसलमानों और प्रजाओं को लूटना मारना ही अपना धन्धा बना लिया। भारत के उत्तर पश्चिमी भाग से मगोलों के हमले आरम्भ हो गये। गजनी से मुलतान के रास्ते पंजाब और सिन्ध पर के

झपट्टा मारते। १२४१ ई० में उन्होंने लाहौर पर चढ़ाई कर वहाँ के मुसलमानों की बुरी तरह से मार-काट की।

उड़ीसा के गंग वंशी राजा नरसिंह देव प्रथम ने १२४४ ई० में गौड़ पर चढ़ाई की। लखनौती का दुर्ग उसके अधिकार में आ गया। अन्त में अवध से मुस्लिम सेना के आने पर उसे लौटना पड़ा। मेदिनीपुर, हावड़ा, हुगली और बर्दवान सब उसके अधीन रहे।

आन्ध्र और महाराष्ट्र के उत्तर तरफ उड़ीसा के गंगों और गुजरात के चालुक्यों का सम्बन्ध उत्तर और दक्खिन दोनों से था। जब इल्तुतमिश गुजरात पर चढ़ाई करना चाहता था उसी समय देवगिरि का राजा सिंघण भी उस पर घात लगाये था। भोला भीम के मंत्री वीरधवल ने दोनों से गुजरात को बचाया, परन्तु उसके उत्तराधिकारी से १२४३ ई० में वीरधवल के बेटे ने राज्य छीन लिया। वीरधवल भी गुजरात के सोलंखियों की एक दूसरी शाखा में से था। उस शाखा के पास व्याघ्रपल्ली अर्थात् बघेल गाँव की जागीर थी। इसी कारण से यह बघेल सोलंखी कहलाते रहे।

१२४५ ई० में फिर मंगोलों के एक दल ने उच्च के किले को घेर लिया। तब गयासुद्दीन बलबन जो इलतुतमिश का दामाद था, उसने सेना लेकर वहाँ जा कर उन्हें मार भगाया। दिल्ली की गद्दी पर सरदारों ने रजिया के छोटे भाई नासिरुद्दीन महमूद को बैठाया। उसने बलबन को अपना मंत्री बनाया। दिल्ली के शासन में जान पड़ गई। बलबन ने तुर्क सरदारों को दृढ़ता से दबाया और सेना और किलों को ठीक किया।

सन् १२४७ में उसने सुलतान के साथ खोकरों पर चढ़ाई की। सिन्ध के किनारे उसने उनके राजा जसपाल सेहरा को हराया। वहाँ से लौट कर उसने दोआब और मेवात पर चढ़ाइयाँ कीं,

और रणथम्भौर को वापिस लेने की निष्फल चेष्टा की। मालवा और जमौनी की सीमापर के नरवर, चन्देरी तथा कालिंजर प्रदेशों पर भी चढाइयाँ कीं। यद्यपि उसे सफलता नहीं मिली, पर तो भी लूट में पर्याप्त धन हाथ लगा।

सन् १२५७ में मंगोलों का एक दल मुलतान लेकर सतलज तक आ पहुँचा और बडी मुश्किल से वापस किया जा सका। बलबन ने सीमान्त के किलों की ठीक कराकर योग्य सैनिक तैनात किया।

इसी समय (१२५५ ई० में) लखनौती के हाकिम उजबक ने गंगा के दक्खिन नदिया तक और उत्तर की ओर वर्धन कोट (जि० बगुडा) तक तुर्क राज्य की सीमा पहुँचा दी। उसने कामरूप पर भी चढाई की, पर वहाँ उसकी वही गति बनायी गई जो मुहम्मद-इब्न बख्तयार की बनी थी। वह कामरूप के राजा की कैद में मरा।

१२६० ई० में बलबन ने मेवात पर और १२६४ में कटहर (आधुनिक रुहेलखण्ड) के हिन्दुओं पर चढाइयाँ की। १२६५ ई० में नासिरुद्दीन की मृत्यु हो जाने पर बलबन स्वयं सुलतान बन बैठा। दो आब और कटहर के हिन्दुओं ने पिछलो सनाओं से — जिसमें १२००० मेव मौत के घाट उतार दिये गये थे। कुछ भी सबक न सीखा था। हिमालय की तराई से लेकर दिल्ली शहर के भीतर तक मेवों के धावे होते, दिल्ली कीपनिहारिनों का कुओं जाना दूभर हो गया और शहर के पच्छिमी दरवाजे सन्ध्या से पहले ही बंद कर जाते थे। बलबन ने दिल्ली शहर के पडोस के सब जंगल साफ करा दिये, जहाँ मेव शरण पाते थे। दो आब और कटहर पर फिर चढाइयाँ हुई। वह मालवा होते हुये गुजरात पर चढाई करने की इच्छा से चला पर रास्ते में चित्तौड़ के राणा

अमरसिंह जिसने १२७६ से १४०२ ई० में चित्तौड़ का शासन किया था—से हार कर लौट आया।

जिस समय की घटना का यहाँ उल्लेख किया गया है, उस समय अफ़गानिस्तान और दिल्ली के बीच का रास्ता मुलतान (उच्च) होकर था। व्यास नदी तब सतलज में मिलने के बजाय मुलतान के नीचे चनाब में मिलती थी, जिससे रावी और सतलज के बीच जो सूखी ऊँची बियावान जमीन है, वह हरा भरा प्रदेश था। गज़नी से उच्च, मुलतान और दीपालपुर होकर लोग दिल्ली आते थे। दीपालपुर दिल्ली सल्तनत का बड़ा सीमान्त नाका था। नागोर और अजमेर भी सीमान्त के समीपवर्ती देश थे।

लखनौती का शासक जो बलबन का एक विश्वासपात्र था। बलबन को इस तरह पच्छिम में व्यस्त देख मुगीसुद्दीन तोगरल नाम से स्वतंत्र बन बैठा। उसे कामरूप और उड़ीसा की चढ़ाइयों की लूट में अच्छा धन हाथ लगा था। १२८२ ई० में मुगीसुद्दीन तोगरल बलबन द्वारा पकड़ा गया और खुले बाजार में फाँसी पर लटका दिया गया। नासिरुद्दीन महमूद नामक उसका बेटा गौड़ का हाकिम बनाया गया।

उस समय जब त्रैलोक्य वर्मा त्रिपुरी का शासक था। पश्चिमोत्तर और पूर्वी भारत की जो स्थिति रही है, वह ऊपर अच्छी तरह दर्शाई जा चुकी है। उस काल दक्षिण भारत में देवगिरि (महाराष्ट्र), ओरंगल (आन्ध्र) और द्वारसमुद्र (कर्णाटक) के अलग अलग राज्य हो गये थे। चोल राज्य के पास तब तामिल और केरल प्रान्त बचे थे। १२४४ ई० में राजराज चोल और उसके भाई राजेन्द्र तृतीय में युद्ध छिड़ा। तब फिर राजराज ने वीर नरसिंह के बेटे वीर सोमेश्वर से मदद ली। राजराज मारा गया। राजेन्द्र ने गद्दी पाई। लेकिन होयसल राजा

ने अब और श्रीरगम् के ५ मील उत्तर खडनपुर (कन्नूर) में छावनी डाली। कर्णाटक पठार से लगे हुए तामिल प्रदेश पर अधिकार कर लिया। तभी काकतीय राजा गणपति ने ( १२६० ई० में ) नेल्लूर से कांची तक उत्तरी तामिल प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया। इस तरह दक्षिण भारत में भी उस काल राजेन्द्र चोल, गणपति काकतीय, जटावर्मा पाण्ड्य और सोमेश्वर होयसल १२४४ ई० से लेकर १२५४ ई० तक लड़ते झगड़ते रहे।

श्री जयचन्द्र विद्यालंकार इतिहास प्रवेश पृष्ठ २३७ पर लिखते हैं—' महाराष्ट्र और उड़ीसा के बीच त्रिपुरी का चेदि राज्य था, जिसकी स्वाभाविक सीमा वर्धा नदी से मगध के दक्षिण पश्चिम तक थी। उस राज्य पर यद्यपि कोई मुस्लिम हमला नहीं हुआ, तो भी १३वीं सदी के अन्त में वह भी आप से आप छिन्न भिन्न हो गया। उसके इलाकों में जहाँ तहाँ छोटे मोटे सरदार खड़े हो गये। उत्तर पूर्वी चेदि में गुजरात के बघेल सोलंकियों की एक शाखा जा बसी, जिससे वह प्रदेश बघेलखंड कहलाने लगा। इन बघेलों ने जमौती के चन्देलों से कालंजर ले लिया। महाकोशल अर्थात् छत्तीसगढ़ में चेदि राजवंश की एक शाखा राज्य करती थी। उनकी राजधानी रत्नपुर थी। मालवा के परमारों की शक्ति भी इस शताब्दी में क्षीण हो गई। पृथ्वीराज ने चंबल (वर्तमान ग्वालियर) नदी तक का प्रदेश उनसे ले लिया, तभी से उनका संबंध उत्तर के मैदान से टूट गया था। उनके और दिल्ली सल्तनत के बीच रणथम्भोर का चौहान राज्य बना रहा। जमौती के चन्देलों से कालपी का मैदान और कालिंजर छिन गया, तो भी वे निःशक्त न हुए। गुलामवंश के समय उनके केवल दो राजाओं त्रैलोक्य वर्मा ( चन्देल )—१२१२-६१ ई० और वीरवर्मा ( १२६१ से १२८६ ) ने राज्य किया।"

इस उपरोक्त उद्धरण से स्पष्ट हो जाता कि

युद्ध में परास्त कर अपने अधीन किया।* इसके बाद बार क्रम से मालवा, गुजरात, राजपूताना और दक्खिन के लिये बढ़ा। गुजरात में उस समय कर्णदेव बघेल-सोलंखी राज्य करता था। श्री जयचन्द्र विद्यालंकार "इतिहास प्रवेश" पृ० २३४ पर लिखते हैं—'राजा कर्ण हार कर भागा और देवगिरि पहुंचा।"

इस कर्णदेव सोलंखी ( बघेल ) का विवाह त्रिपुरी के कलचुरि घराने की शाखा रतनपुर के कलचुरि राजा सोमदत्त की कन्या पद्मकुँवर से हुआ था। रीवा राज्य का प्रसिद्ध बांधवगढ़ का दुर्ग—जिसके चारों ओर दलदल है। कर्णदेव बघेल को कलचुरि राजा सोमदत्त ने दहेज में दिया था। अलाउद्दीन की चढ़ाई से अणहिलवाड़ा गुजरात का बघेल राजवंश नष्ट हो गया। अतएव बघेल लोग इधर ( वर्तमान बघेलखंड में ) चले आए।† तभी से चेदि राज्य के इस भाग में बघेल आबाद हैं। और तत्पश्चात् यह प्रदेश इन्हीं के नाम पार बघेखण्खड कहा जाने लगा।

बघेलखंड के पश्चिम चेदि राज्य की राजधानी त्रिपुरी में बघेलों के आने से पूर्व गोंडों का उदय हुआ था। जबलपुर ज्योति पृ० २८ पर लिखा है कि "ये गोंड घर के भेदिये थे, परन्तु नवीन षड़यन्त्र रचने वाला कात्यायन के समान ही सुरभी पाठक नाम का एक ब्राह्मण ही था। उसने स्वयं राज हड़प लेने का साहस तो नहीं किया, परन्तु नवीन राजा से यह प्रतिज्ञा कराली कि "राजमंत्री इसी के वंश से लिया जाय"। इस प्रकार पाठक जी ने दंगा

---

*दमोह जिले के बलैया ग्राम के सतीचौरे में संवत् १३६७ पड़ा है और राजत्वकाल अलाउद्दीन का लिखा है। जबलपुर ज्योति पृ० २७।

†रीवा राज्य का इतिहास पृ०१८

बखेड़े की झंझट गोंड राज के माथे मढ़ यथार्थ सत्ता ( राजस्व ) अपने और अपने वंशजों के हाथ में कर लिया। गोंड राना ने जबलपुर और त्रिपुरी के मध्य गढ़ प्रस्तुत कर वहीं राजधानी स्थापित की। यही स्थान गढ़ा के नाम से प्रख्यात हो गया। इसके समीप ही कटङ्गा या कटङ्गा नाम का पर्वत है। यहां बस्ती भी थी, इसलिये कई वर्षों तक गढ़ा का नाम गढ़ा कटङ्गा ही चलता रहा। जब गोंड राजाओं ने पीछे से मंडला को राजधानी बनाई तब से इसका नाम गढ़ा मंडला हुआ।

---

# शाखाएँ

## १—दक्षिण कोशल के कलचुरि

कलचुरि राज घराने की शाखायें जो भारत जैसे महादेश में अपने उत्थान काल में स्थान २ पर स्थापित हुई और समय के प्रभाव मे पड़कर प्रकट होती तथा लुप्त होती रही हैं, धीरे धीरे उनका भी उद्घाटन होता जा रहा है। यदि प्रयत्न किया जाय तो कलचुरि जाति का आदि से और अब तक का एक अच्छा सुन्दर गठा हुआ इतिहास सकलित हो सकता है। भारतीय इतिहास के अनुशीलन में ऐसी अनेक सामग्रियाँ उपलब्ध होती हैं जो हैहय क्षत्रिय जाति के सुविस्तृत इतिहास को चतुर्मुखी और प्रतिभा सम्पन्न बनाने में सहायता देती हैं, किन्तु इस कार्य को अग्रगण्य करने में हम जैसे धनहीन सदैव असमर्थ रहेंगे।

(१) कलिंगराज—कोकल्लदेव जो कलचुरियो के पूर्व पुरुषाओं में से एक था। जिसने अपने पूर्वजो की आकांक्षा को पूर्ण कर त्रिपुरी को चेदि देश की राजधानी बनाकर और उसे यथार्थ गौरव प्राप्त कराकर समाधि ली थी, १८ पुत्रों का पिता था। उनमे से सबसे बड़ा मुग्धतुग था। जिसने कोकल्लदेव के बाद त्रिपुरी का उत्तराधिकार प्राप्त किया था—और उससे छोटा कलिंगराज था, जिसने अपने पूर्वजों द्वारा अर्जित दक्षिण कोशल के सम्पूर्ण देश पर कलचुरि पताका फहराई थी। आगे चलकर इसके राज्य ने उन्नति की और धीरे धीरे यह त्रिपुरी से अलग स्वतंत्र हो गया था। रत्नपुर के एक लेख से यह पता चलता है कि कलिंगराज ने दक्षिण कोशल पर अधिकार कर के तुम्माण को अपनी राजधानी

बनाया था। रत्नपुर के लेख की अपेक्षा अन्य लेख भी तुम्माण को ही राजधानी होना बताते हैं।

(२) कमलराज—कलिंगराज का पुत्र कमलराज था। कलिंगराज के बाद तुम्माण की गद्दी पर कमलराज ही आसीन हुआ था।

(३) रत्नराज (रत्नदेव प्रथम)—कमलराज का पुत्र रत्नराज था। इसे रत्नदेव भी कहते थे। यह अपने पिता कमलराज के बाद तुम्माण की गद्दी पर बैठा। इसने अपने नाम पर दक्षिण कोशल की नई राजधानी का निर्माण किया। इसका नाम रत्नपुर पड़ा। इस रत्नपुर में ही इसने रत्नेश्वर महादेव की स्थापना की। रत्नपुर इस वंश की अन्त तक राजधानी बना रहा। रत्नराज का विवाह कोमोमण्डल के राजा वज्जूक की पुत्री नोनल्ला से हुआ था। नोनल्ला और रत्नराज के औरस से पृथ्वीदेव (प्रथम) नाम का पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ।

(४) पृथ्वीदेव (प्रथम)—रत्नराज के बाद पृथ्वीदेव (प्रथम) महाकोशल का अधिपति हुआ। इसने रत्नपुर में एक तालाब और तुम्माण में पृथ्वीश्वर का मन्दिर बनवाया। इसकी अपेक्षा इसने अनेक महायज्ञ किये थे। इसकी रानी का नाम राजल्ला था। इस राजल्ला से जाजल्लदेव (प्रथम) नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ।

(५) जाजल्लदेव (प्रथम)—पृथ्वीदेव के पीछे जाजल्लदेव (प्रथम) रत्नपुर का अधीश्वर हुआ। यह महाकोशल के कलचुरि वंश में महान् और प्रतापी नरेश निकला। ऐसा प्रतीत होता है कि कलचुरि सम्राट कर्ण की अत्यन्त वृद्धावस्था के समय जब दक्षिण देश के राजाओं ने विद्रोह का आरम्भ किया तो ठीक उसी समय इसने भी त्रिपुरी साम्राज्य के अंकुश को अपने कंधे पर से उतार फेंका और स्वतंत्र नरेश बन गया। इसने अनेक राजाओं को अपने अधीन

भण्डारा, तलहारी, दण्डकपुर, नंदावली और कुक्कुट के माण्डलिक राजा इसको कर देते थे। चेदि का राजा (यशःकर्ण) इसका परम मित्र और कान्यकुब्ज (कन्नौज) तथा जेजाकभुक्ति (महोबा) के राजा इसकी वीरता को देख करके स्वयं ही इसके मित्र बन गए। इसने सोमेश्वर को जीता; परन्तु यह सोमेश्वर कौन था, इसका कुछ स्पष्ट वर्णन नहीं मिलता। प्रतीत होता है कि यह सोमेश्वर दक्षिण का चालुक्य वंशी सोमेश्वर (द्वितीय) होगा, जो महान् प्रतापी था। जिसके सामने से एक बार मालवा के राजा भोज को भी भागना पड़ा था। यह तैलप का वंशज था और कल्याण (नासिक) के पास पश्चिम की ओर ११८२ ई० तक राज्य करता रहा है।

जाजल्लदेव ने अपने नाम पर नगर का निर्माण किया था। नगर में मठ बाग और जलाशय सहित एक शिव का मन्दिर बनवा कर दो गाँव उस मन्दिर के अर्पण किया। जाजल्लदेव के गुरु का नाम रुद्रशिव था, जो दिङ्नाग आदि आचार्यों के सिद्धान्तों का ज्ञाता था। जाजल्लदेव के सान्धिविग्रहिक मंत्री का नाम विग्रहराज था। इसकी रानी का नाम सोमलदेवी था। जिससे रत्नदेव नामक पुत्ररत्न की इसे प्राप्ति हुई थी। इसने अपने सिक्के भी चलाये थे। उनमें से प्राप्त होने वाले सिक्के प्रायः ताँबे के है। जिनमें एक तरफ "श्रीमज्जाजल्लदेवः" लिखा है और दूसरी ओर हनुमान जी की मूर्ति बनी है। चेदि संवत् ८६३ (वि० संवत् ११७१ = ई० सन् ११९४) का रत्नपुर में एक लेख इसी जाजल्लदेव का मिला है। जिसमें इसके प्रताप और गुणों का वर्णन है।

जाजल्लदेव के सिक्कों पर हनुमान जी की मूर्ति यह प्रमाणित करती है कि इस राजा ने शैव धर्म ग्रहण करने पर भी महावीर जी की भक्ति को प्रधानता दी थी। शक्ति संचय करने वाले प्रायः

प्रत्येक प्राणी महावीर जी को ही अपना इष्टदेव समझते हैं और सर्वत्र उन्हीं की आराधना में निरत रहते हैं।

(६) रत्नदेव (द्वितीय)—रत्नदेव द्वितीय जाजल्लदेव प्रथम का पुत्र था। यह अपने पिता के बाद रत्नपुर की गद्दी पर बैठा था और अपने पिता के समान ही प्रतापी था। सिंहासन पर बैठते ही इसने कालिंगदेश के चोड राजा गंग पर चढ़ाई की और उसे युद्धभूमि में परास्त किया। इसके चलाये हुये ताँबे के सिक्के मिले हैं। इन सिक्कों पर इसके पिता की ही भाँति "श्रीमद्रत्नदेव" लिखा है और दूसरी ओर हनुमान जी की मूर्ति बनी है। इस शाखा में रत्नदेव नाम के दो राजा हुए हैं, इसलिये निश्चय पूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि ये सिक्के रत्नदेव प्रथम के हैं अथवा द्वितीय के। परन्तु हनुमान जी की मूर्ति से यह प्रतीत होता है कि यह सिक्के रत्नदेव द्वितीय के ही हो सकते हैं।

(७) पृथ्वीदेव (द्वितीय)—यह रत्नदेव द्वितीय का पुत्र था। इसके सोने और ताँबे के सिक्के मिले हैं। इन सिक्कों पर एक तरफ "श्रीमत्पृथ्वीदेव" अंकित है और दूसरी ओर हनुमान जी की मूर्ति बनी है। यह मूर्ति दो प्रकार की पाई जाती है। किसी पर द्विभुज और किसी पर चतुर्भुज।

महाकोशल की शाखा में पृथ्वीदेव नाम के तीन राजा हुये हैं, इसलिये यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि यह सिक्के किस पृथ्वीदेव के हैं। इसके समय के दो शिलालेख मिले हैं। पहला शिलालेख चेदि सं० ८९६ (वि० सं० १२०२=ई० सन् ११४५) का और दूसरा चेदि सं० ९१० (वि० सं० १२१६ =ई० सन् ११५६) का है। इसके पुत्र का नाम जाजल्लदेव था।

(८) जाजल्लदेव (द्वितीय) यह अपने पिता पृथ्वीदेव दूसरे का उत्तराधिकारी हुआ। चेदि संवत् ९१९ (वि० सं० १२२४=ई० सन् ११६७) का एक शिलालेख जाजल्लदेव

द्वितीय का मिला है। इसके पुत्र का नाम रत्नदेव (तृतीय) था।

(९) रत्नदेव (तृतीय) - यह जाजल्लदेव का पुत्र था और इसके पीछे गद्दी पर बैठा। यह चेदि संवत् ९३३ (वि० संवत् १२३८=ई० सन् ११८१) में विद्यमान था। इसके पुत्र का नाम पृथ्वीदेव था।

(१०) पृथ्वीदेव (तृतीय) — यह अपने पिता रत्नदेव का उत्तराधिकारी हुआ था। यह वि० सं० १२४७ (ई० सन् ११९०) में विद्यमान था।

पृथ्वीदेव तीसरे के पीछे वि० सं० १२४७ से इन हैहय वंशियों का इतिहास शृंखलाबद्ध नहीं मिलता। रींवा राज्य का इतिहास के अनुसार १३वीं शताब्दी में रत्नपुर के राजा सोमदत्त का का पता चलता है जो कर्णदेव बघेल का ससुर था। जैसा कि हम आगे लिख आये हैं।

प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता स्व० रायबहादुर डा० हीरालाल जनवरी १९३२ के हैहय क्षत्रिय मित्र पृ० ७-८ पर लिखते हैं—

"रत्नपुर वालों ने भी अपना खूब विस्तार किया और कई राजवंशों को उन्होंने अपने अधीन कर लिया। छत्तीसगढ़ इनके पूर्ण अधिकार में था। आसपास के भण्डारा, लांजी, वैरागढ़ खिमड़ी इत्यादि के राजा उन्हें कर दिया करते थे। अन्त में जब दिल्ली के मुसलमानी घरानो का जोर बढ़ा, तब रत्नपुर वालों को उनका स्वामित्व स्वीकार करना पड़ा। परन्तु तब भी उनकी स्वतंत्रता में बहुत भेद नहीं पड़ा। निदान अठारहवीं सदीमें जब मराठे उड़ीसा पर चढ़ाई करने को निकले तब मार्ग में उन्होंने रत्नपुर के किले पर आक्रमण किया। उस समय वहाँ पर रघुनाथ सिंह राजा था। वह बहुत वृद्ध था। अतएव इस आकस्मिक आक्रमण का सामना न कर सका। मराठों ने उसका राज्य छीन लिया। तिस पर भी रत्नपुर की एक शाखा जो रायपुर में राज्य

करती थी बच रही। परन्तु वह विशेष बलशाली नहीं थी। इसलिये मराठों को उससे राज्य छीनने में देर न लगी। मराठों ने रायपुर के हैहयों की परवरिश के लिये प्रति गाँव पीछे एक रुपया लगा दिया। इसके बाद जब रुपया उगाहने की अड़चने पड़ने लगीं तब उसके बदले पाँच गाँव इकट्ठे दे दिये, जिनका उपभोग कलचुरि राजाओं के प्रतिनिधि अब तक कर रहे हैं। इस प्रकार कलचुरि राज्य का अन्त हुये सौ डेढ़ सौ वर्ष ही हुये हैं। संसार का नियम है कि जो बढ़ा सो घटा, जो 'बरा सो बुताना'। अनेक राजाओं का इतिहास देखने से जान पड़ता है कि उनकी आयु प्राय दो तीन सौ वर्ष से अधिक नहीं होती। परन्तु कलचुरियों का राज्य प्राय दो हजार वर्षों तक चलता गया।"

## २—कल्याण के कलचुरि

*श्री कामता प्रसाद जी जैन* (डी० एल०, एम० आर० ए० एस०, ऑनरेरी सपादक 'वीर' व 'जैन सिद्धा त भास्कर', आनरेरी मजिस्ट्रेट और असिस्टेन्ट कलेक्टर अलीगंज, एटा) अपने "संक्षिप्त जैन इतिहास" भाग ३ खड ४ पृष्ठ १० पर लिखते हैं —

"दक्षिण के कलचुरिया के शिलालेखों से पता चलता है कि वे लोग चेदि देश के कलचुरियों के वंशज थे। उन्होंने दक्षिण में जाकर वहाँ के प्रतापी राजा पश्चिमी चौलुक्यों का आश्रय लिया था। उनमें जोगम के पुत्र पेर्माडि (परमर्दि) एक प्रख्यात राजा थे। शक संवत् १०५१ (ई० सन ११२८) में वह पश्चिमी चौलुक्य नरेश सोमेश्वर तृतीय के अधीन सामन्त थे। एक शिलालेख में इनके विरुद इस प्रकार लिखे मिलते हैं "समाधिगत पञ्च महा शब्द—महामण्डलेश्वरम् कालञ्जरपुरवराधीश्वरम्, स्वर्ण वृषभ-ध्वजम् डमरुग तूर्य निर्घोषणम्, कलचुर्य-कुल कमल मार्तण्ड,

कदनप्रचंडम् मान कनका चलम् , सुभटर आदित्यम् , राज सामन्तम् , शरणागत वज्रपंजरम् , प्रताप लंकेश्वरम् , निशंक वल्लभ ।" इनसे उनका एक बलवान और प्रतापी महामडलेश्वर सामन्त होना प्रकट है। उनका ध्वज (पताका) स्वर्ण वृषभ (सोने का बैल) था और डमरू उनका मुख्य बाजा था। पेर्मांडि जिला बीजापुर के निकट तर्दवाडी नामक प्रदेश पर शासन करते थे। उनके पुत्र का नाम बिज्जलदेव था।"

"बिज्जलदेव अपने पिता की भाँति प्रारम्भ में चालुक्य नरेश जगदेकमल्ल द्वितीय के समान्त रहे और उनके स्वर्गवासी होने पर उनके छोटे भाई और उत्तराधिकारी तैल ( तैलप ) तीसरे के सामन्त और सेनापति हुये। सेनापति होने के कारण बिज्जल का अधिकार बढ़ता गया। उसने तैलप के अन्य सामन्तों को अपनी ओर मिला कर उसके कल्याण के राज्य पर ही अधिकार कर लिया। वि० सं० १२१४ से पहले के लेखों में बिज्जल का उल्लेख महामंडलेश्वर के रूप में हुआ है।"

भारत के प्राचीन राजवंश भाग १ पृष्ठ ६० पर श्री विशेश्वर नाथ जी रेउ लिखते हैं:—

"दक्षिण के प्रतापी पश्चिमी चौलुक्य राजा तैलप तीसरे से राज्य छीन कर कुछ समय तक वहाँ पर कलचुरियो ने स्वतंत्र राज्य किया। उस समय इन्होंने अपना खिताब "कालिंजर पुरवराधीश्वर" रक्खा था। इनके लेखो से प्रकट होता है कि ये डाहल ( चेदी ) से इधर गए थे। इसलिए ये भी दक्षिण कोशल के कलचुरियों की तरह चेदि के कलचुरियों के ही वंशज होंगे।

"तैलप से राज्य छीनने के बाद इनकी राजधानी कल्याण नगर में स्थापित हुई। यह नगर निजाम के राज्य में कल्याणि नाम से प्रसिद्ध है। इनका झण्डा "सुवर्ण वृषध्वज" नाम से [illegible] था।

"इनका ठीक ठीक वृत्तान्त जोगम नाम के राजा से मिलता है। इससे पूर्व के वृत्तान्त मे बडी गडबड है, क्योंकि हरिहर ( माइसोर ) से मिले हुए विज्जल के समय के लेख से ज्ञात होता है कि डाहल के कलचुरि राजा कृष्ण के वशज कन्नम ( कृष्ण ) के दो पुत्र थे, विज्जन और सिन्दराज। इनमें से बडा पुत्र अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ। सिन्दराज के चार पुत्र थे—अमुगि, शखवर्मा, कन्नर और जोगम। इनमें से अमुगि और जोगम क्रमश राजा हुये।

"जोगम का पुत्र पेर्माडि ( परमर्दि ) हुआ। इस पेर्माडि के पुत्र का नाम विज्जल था। विज्जलके ज्येष्ठ पुत्र का नाम सोविदेव ( सोमदेव ) था। इसके शक सवत् १०६५ ( वि० स० १२३० ) के लेख में लिखा है —

"चन्द्रवशी सतम ( सतनम ) का पुत्र समररस हुआ। उसका पुत्र कन्नम हुआ। कन्नम के, नारण और बिज्जल दो पुत्र हुए। बिज्जल का पुत्र कर्ण और उसका जोगम हुआ। परन्तु शक सवत् १०९६ ( गत ) और ११०५ ( गत )=वि० सवत् १२-३१ और १२४० के ताम्रपत्रों में जोगम को कृष्ण का पुत्र लिखा है। तथा उसके पूर्व के नाम नहीं लिखे हैं। इसी तरह शक सवत् ११०० वि० स० १२३५ ) के ताम्रपत्र में कन्नम से बिज्जल और राजल का, तथा राजल से जोगम का उत्पन्न होना लिखा है। इस प्रकार करीब करीब एक ही समय के लेख और ताम्रपत्रों में दिये हुये जोगम के पूर्वजो के नाम परस्पर नहीं मिलते। जो इस प्रकार हैं —

सम्वत् १२३०—कन्नम नारण=( बिज्जल ) कर्ण—जोगम।

सम्वत् १२३१—कृष्ण—जोगम।

सम्वत् १२३५—कन्नम— बिज्जल=राजल—जोगम।

उपरोक्त उद्धरण में से प्रथम में जोगम का पिता कर्ण, दूसरे में जोगम का पिता कृष्ण और तीसरे में जोगम का पिता राजल है। कर्ण और कन्नम में तो कोई विशेष भेद की बात नहीं समझ पड़ती; कर्ण और कन्नम दोनों राम और रामन् के समान एक ही शब्द के दो रूप है। इस तरह १२१० और १२३१ के लेखों में समानता स्पष्ट है। परन्तु १२३५ वाले लेख में जोगम बिज्जल के भाई राजल का पुत्र कहा गया है। इस प्रकार वंशक्रम की गड़बड़ी यह निर्णय करने से रोकती है कि जोगम वास्तव में किसका पुत्र था। परन्तु जोगम के बाद वंशावली ठीक मिलती है।

( १ ) जोगम—जोगम निश्चय ही प्रतापी नरेश था। इसके पुत्र का नाम पेर्माडि ( परमर्दि ) था।

( २ ) पेर्माडि ( परमर्दि )—यह जोगम का पुत्र और उत्तराधिकारी था। शक सम्वत् १०५१ ( वर्तमान वि० सं० ११८५ = ई० सन् ११८८ ) में यह विद्यमान था। यह पश्चिम के सोलंकी ( चालुक्य ) राजा सोमेश्वर तीसरे का सामन्त था। इस तरह यह नरेश सामन्त ( करद = मांडलिक ) राजा थे। तर्दवाडी जिला ( बीजापुर के निकट ) इनके अधीन था। यह बात ऊपर उद्धृत की जा चुकी है। इसके पुत्र का नाम बिज्जलदेव था।

(३) बिज्जलदेव—यह अपने पिता परमर्दिदेव के समान ही चालुक्य नरेश राजा सोमेश्वर तीसरे के उत्तराधिकारी जगदेकमल्ल दूसरे का सामन्त बना। उसकी मृत्यु के बाद बिज्जल उसके छोटे भाई और उत्तराधिकारी तीसरे तैलप का सामन्त हुआ। धीरे धीरे तैलप तीसरे ने उसे अपना सेनापति बनाया। इससे बिज्जल का प्रभाव बहुत ही बढ़ गया। इस अवसर से लाभ उठा कर इसने तैलप के दूसरे सामन्तों को अपनी ओर मिला लिया और उसके कल्याण के राज्य पर अधिकार कर लिया। शक संवत् १०७९ = वि० सं० १२१४ के पहले के लेखों में बिज्जल को महामण्डलेश्वर

लिखा है। इससे समझ पड़ता है कि सम्भवतः इसी समय से उसने अपना राज्य वर्ष लिखना आरंभ किया है। साथ ही त्रिभुवनमल्ल, भुजबल चक्रवर्ती एवं कलचुर्य चक्रवर्ती आदि विरुद (उपाधियाँ) भी धारण की थीं, किन्तु फिर भी कुछ समय तक महामण्डलेश्वर ही कहलाता रहा। किन्तु शक सं० १०८१ = वि० सं० १२१६ के लेख में उसके साथ समस्त भुवनाश्रय, महाराजाधिराज, परमेश्वर, परमभट्टारक आदि उपाधियाँ लगी हुई मिलती हैं। इससे समझ पड़ता है कि वि० सं० १२१६ के लगभग वह पूर्ण स्वतंत्र नरेश हो गया था। क्योंकि कल्याण के चालुक्यराज के अन्य सामन्त पहले ही मिल कर उसके अधीन बन चुके थे। इस तरह सामन्तों को अपने अनुकूल कर विज्जल द्वारा तैलप का राज्य अपहरण कर लिये जाने पर तैलप को कल्याण छोड़ कर अण्णिगिरि (धारवाड़) में जाकर बसना पड़ा। परन्तु विज्जल ने वहाँ भी उसका पीछा न छोड़ा। अन्त में तैलप बनवासी की ओर चला गया।

विज्जल का चालुक्य साम्राज्य सुविस्तृत था। आज का मैसूर प्रदेश इस साम्राज्य के अन्तर्गत था। जिसके प्रमुख सामन्त निम्न प्रकार थे—

१—दण्डनायक श्रीधर (११५७—११६२) अण्णिगिरि के निकट राज्याधिकारी थे।

२— दण्डनायक बर्मदेव—सगरवंशी मुजजदेव के पुत्र थे और बनवासी प्रदेश पर (११६१—११६०) राज्य करते थे।

३—दण्डनायक कम्मण (११६३—११६४) महामण्डलेश्वर माम के उत्तराधिकारी थे और कदम्ब हगल के शासनकर्ता थे।

४—महामण्डलेश्वर विजयादित्य—करहाट के शिलाहार वंश के शासक बनवाड़ पर राज्य करते थे।

५—महामंडलेश्वर कार्तवीर्य तृतीय—मौन्दृति के राष्ट्रकूट वंश रत्न और राज्याधिकारी ( ११६५ ) थे।

६—महासामन्त कलियम्मरस—जीमूतवाहन कुल और खचरु ( खेचर ) वंश के थे।

विज्जल के राज्य में जैनधर्म का अधिक प्रचार था। क्योंकि महामंडलेश्वर विजयादित्य, कार्तवीर्य तृतीय, कलियम्मरस आदि जैन धर्म के संरक्षक और अनुयायी थे। इनके अतिरिक्त राजकर्मचारी भी प्रायः जैनी ही थे। और महाप्रधान सेनाधिपति दंडनायक सिद्धप्पय्य हेमाडे भी जैनी थे, परन्तु उनसे पहले विज्जल के महामंत्री वसुधैक बांधव दंडाधिप रेचिमय्य थे। रेचिमय्य के पिता का नाम नारायण और माता का नाम नागाम्बिका था। इन्होंने ही विज्जलदेव के लिये सम्राज्ञी राज्य लक्ष्मी प्राप्त की थी और ऐश्वर्य का भोग भोगने का अवसर इन्हीं लोगों ने सञ्चित किया था। रेचिमय्य महाप्रचण्ड दंडनायक थे। जिन्हें राजसभा, राजनीति, साहस, सौभाग्य और शुभचरित्र में रस आता था। इनकी बाहु का आश्रय लेकर कलचुरि राज्य खूब फैला और खूब फला। परन्तु जैनियों का यह प्रभाव कलचुरि राज्य और राजा दोनों पर ही वसव नामक ब्राह्मण को असह्य हो उठा। उसने 'वीरशैव' ( लिंगायत ) नाम का नया पंथ चलाया। इस मत के अनुयायी वीरशैव ( लिंगायत ) और इसके उपदेशक जंगम कहलाने लगे। उन लोगों ने इस मत के प्रचारार्थ बड़ा उद्यम किया। वसव ने साम्राज्य भर में उपदेशक नियत कर दिये। इस प्रयत्न में उसे प्रसिद्धि मिली। जो लोग इस मत के अनुयायी होते थे वे एक चाँदी की डिबिया गले में लटकाये रहते थे। जिसमें शिवलिंग की मूर्ति होती थी।

लिंगायतों के 'वसव पुराण' और जैनों के 'बिज्जलराय चरित्र, नामक ग्रन्थों में अनेक करामात सूचक अन्य बातो के

साथ बसव और बिज्जलदेव का वृत्तान्त लिखा है। ये दोनों पुस्तकें धर्म के आधार पर लिखी गई हैं, इसलिए इन दोनों पुस्तकों का वृत्तान्त परस्पर नहीं मिलता। 'बसव पुराण' में लिखा है – "बिज्जलदेव के प्रधान बलदेव की पुत्री गंगादेवी से बसव का विवाह हुआ था बलदेव के देहान्त के बाद बसव को उसकी प्रसिद्धि और सद्गुणों के कारण बिज्जल ने अपना प्रधान, सेनापति और कोषाध्यक्ष नियत किया, तथा अपनी पुत्री नीललोचना का विवाह उसके साथ कर दिया। उस समय अपने मत के प्रचारार्थ उपदेशों के लिये बसव ने राज्य का बहुत सा द्रव्य खर्च करना प्रारम्भ किया। यह खबर बसव के शत्रु के दूसरे प्रधान ने बिज्जल को दी, जिससे बसव से बिज्जल अप्रसन्न हो गया तथा इनका आपस का मनोमालिन्य बढ़ता ही गया। यहाँ तक नौबत पहुँची कि एक दिन बिज्जलदेव ने, हल्लेइज और मधुवेय्य नाम के दो धर्मनिष्ठ जंगमों की आँखें निकलवा डालीं। यह हाल देख बसव कल्याण से भाग गया। परन्तु उसके भेजे हुये जगदेव नामक पुरुष ने अपने दो मित्रों सहित राज मन्दिर में घुस कर सभा के बीच में बैठे हुये बिज्जल को मार डाला। यह खबर सुनकर बसव कुडलो सगमेश्वर नामक स्थान में गया। वहीं पर वह शिव में लय हो गया। बसव की अविवाहिता बहिन नागलाम्बिका से चन्नबसव का जन्म हुआ। इसने लिंगायत मत की उन्नति की। (लिंगायत लोग इसको शिव का अवतार मानते हैं)। बसव के देहान्त के बाद वह उत्तरी कनाडा देश के उल्वी स्थान में जा रहा।"

'चन्नबसव पुराण' में लिखा है —

"शालिवाहन शक सं० ७०७ (वि० सं० ८४२) में बसव, शिव में लय हो गया। (यह संवत् सर्वथा कपोल कल्पित है) उसके बाद उसके स्थान पर बिज्जल ने चन्नबसव को नियत किया। एक

समय हल्लेइज और मधुवेय्य नामक जंगमों को रस्सी से बंधवाकर बिज्जल ने पृथ्वी पर घसीटवाए; जिससे उनके प्राण निकल गए। यह हाल देख जगदेव और बोम्मण नामक दो मशालचियों ने राजा का मार डाला। उस समय चन्नबसव भी कितने ही सवारों और पैदलों के साथ कल्याण से भाग कर उल्वी नामक स्थान में चला आया। बिज्जल के दामाद ने उसका पीछा किया, परन्तु वह हार गया। उसके बाद बिज्जल के पुत्र ने चढ़ाई की। किन्तु वह कैद कर लिया गया। तदनन्तर नाग-लांबिका की सहायता से मरी हुई सेना को चन्नबसव ने पीछे जीवित कर दिया। तथा नये राजा को बिज्जल की तरह जंगमों को न सताने और धर्म मार्ग पर चलने का उपदेश देकर कल्याण को भेज दिया।"

"बिज्जलराय चरित में लिखा है:—

"बसव की बहिन बड़ी रूपवती थी। उसको बिज्जल ने अपनी पासवान (अविवाहित=रखेल स्त्री) बनाई। इसी कारण बसव बिज्जल के राज्य में उच्चपद को पहुँचा था।" इसी पुस्तक में बसव और बिज्जल के देहान्त के विषय में लिखा है कि "राजा बिज्जल और बसव के बीच द्वेषाग्नि भड़कने के बाद, राजा ने कल्हार (सिल्हारा=कोल्हापुर) के महामण्डलेश्वर पर चढ़ाई की। वहाँ से लौटते समय मार्ग में एक दिन राजा अपने खेमे में बैठा था, उस समय एक जंगम जैन साधु का वेष बनाकर उपस्थित हुआ, एक फल उसने राजा को भेंट किया। उस साधु से वह फल लेकर राजा ने सूँघा; जिससे उसपर विष का प्रभाव पड़ गया और उसीसे उसका देहान्त हो गया। परन्तु मरते समय राजा ने अपने पुत्र इम्मड़ि बिज्जल (दूसरा बिज्जल) से कह दिया कि, यह कार्य बसव का है, अतः तू उसको मार डालना। इस पर इम्मड़ि बिज्जल ने बसव को पकड़ने और जङ्गमों को

मार डालने की आज्ञा दी। यह खबर पाते ही कुएँ में गिर कर बसव ने आत्म हत्या कर ली। उसकी स्त्री नीलाम्बा ने विष भक्षण कर लिया। इस तरह नवीन राजा का क्रोध शान्त होने पर चन्नबसव ने अपने मामा बसव का द्रव्य राजा को भेंट कर दिया। इससे प्रसन्न हो कर उसने चन्नबसव को अपना प्रधान बना लिया।"

भारत के प्राचीन राजवंश के लेखक आगे फिर लिखते हैं—"यद्यपि पूर्वोक्त पुस्तकों के वृत्तान्तों में सत्यासत्य का निर्णय करना कठिन है तथापि सम्भवतः बसव के बीच का द्वेष ही इन दोनों के नाश का कारण हुआ होगा।"

बिज्जलदेव के दो रानियों से पाँच पुत्र थे। सोमेश्वर (सोविदेव), संकम, आहवमल्ल, सिंघण और वज्रदेव। इसके एक कन्या भी थी। उसका नाम सिरियादेवी था। इसका विवाह सिंदवंशी महामण्डलेश्वर चावड दूसरे के साथ हुआ था। वह येलबर्ग प्रदेश का स्वामी था। सिरियादेवी और वज्रदेव की माता का नाम एचलदेवी था। बिज्जलदेव के समय के कई लेख मिले हैं। उनमें का अन्तिम लेख वर्तमान शक सं० १०९१ (वि० सं० १२२५) आषाढ़ वदी अमावस्या (दक्षिणी) का है। उसका पुत्र सोमेश्वर उसी वर्ष से अपना राज्य वर्ष (सन् जुलूस) लिखता है। अतएव बिज्जलदेव का देहान्त और सोमेश्वर का राज्याभिषेक वि० सं० १२२५ में होना चाहिये। यह सोमेश्वर अपने पिता के समय में ही युवराज हो चुका था।

(४) सोमेश्वर (सोविदेव)—यह अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ। इसकी उपाधियाँ ये थीं—भुजबलमल्ल, राय मुरारी, समस्त भुवनाश्रय, श्री पृथ्वीवल्लभ, महाराजाधिराज परमेश्वर और कलचुर्य चक्रवर्ती।

सोमेश्वर देवी की रानी सावलदेवी सङ्गीत विद्या में बड़ी

निपुण थी। एक दिन उसने अनेक देशों के प्रतिष्ठित पुरुषों से भरी हुई राजसभा को अपने उत्तम गान से प्रसन्न कर दिया। इस पर प्रसन्न होकर सोमेश्वर ने उसे भूमि दान करने की आज्ञा दी। यह बात उसके ताम्रपत्र से प्रकट होती है। इस देश में मुसलमानों का आधिपत्य होने के बाद से ही कुलीन और राज्य-घरानों की स्त्रियों में से संगीत विद्या लुप्त हो गई है। इतना ही नहीं, यह विद्या अब उनके लिये भूषण के बदले दूषण समझी जाने लगी है। परन्तु प्राचीन समय में स्त्रियों को संगीत की शिक्षा दी जाती थी तथा यह शिक्षा स्त्रियों के लिये भूषण भी समझी जाती थी। इसका प्रमाण रामायण, कादम्बरी, मालविकाग्निमित्र और महाभारत आदि संस्कृत साहित्य के अनेक प्राचीन ग्रन्थों से मिलता है। तथा कहीं-कहीं प्राचीन शिलालेखों में भी इसका उल्लेख पाया जाता है। जैसे होयशल (यादव) राजा बल्लाल प्रथम की तीनों रानियाँ गाने और नाचने में बड़ी कुशल थीं। इनके नाम पद्मलदेवी चावलदेवी और बाप्पदेवी थे। बल्लाल का पुत्र विष्णुवर्द्धन और उसकी रानी शान्तलदेवी, दोनों गाने, बजाने और नाचने में बड़े निपुण थे।

सोमेश्वर के समय का सबसे पिछला लेख (वर्तमान) शक संवत् १०९९ (वि० सं० १२३३) का मिला है। यह लेख उसके राज्य के दसवें वर्ष में लिखा गया था। उसी वर्ष में उसका देहान्त होना सम्भव है।

(५) संकम (निश्शंकमल्ल)—सोमेश्वर के बाद उसका छोटा भाई संकम राजा हुआ। संकम के नाम के साथ वे सभी उपाधियाँ लिखी मिलती हैं, जो सोमेश्वर के नाम के साथ लगी हुई पाई गई हैं। शक सं० ११०२ = वि० सं० १२३७ के लेख में संकम के राज्य का पाँचवा वर्ष लिखा है।

(६) आहवमल्ल—यह सोमेश्वर का दूसरा छोटा भाई

था। सकम की मृत्यु के बाद यह राज्यासीन हुआ। इसके नाम के साथ भी वे ही पूर्वोक्त सोमेश्वर वाली उपाधियाँ लिखी मिलती हैं। शक सवत् ११०३ से ११०६=वि० स० १२३७ से १२४० तक के आहवमल्ल के समय के लेख मिले हैं।

(५) सिंघण—यह सोमेश्वर का तीसरा छोटा भाई और आहवमल्ल का उत्तराधिकारी था। शक स० ११ ५=वि० स० १२४० का सिंघण के समय का एक ताम्रपत्र मिला है। उसमें उसको केवल महाराजाधिराज लिखा है। वि० स० १२४०= ई० सक ११८३ के आस पास मालका राजा तैल (तैलप) तीसरे के पुत्र सोमेश्वर ने अपने सेनापति बोम्म (ब्रह्म) की सहायता से कलचुरियों से अपने पूर्वजों का राज्य फिर छीन लिया। कल्याण में फिर सोलंकियों का राज्य स्थापित हो गया। इसके बाद फि किसी कलचुरि राजा का लेख नहीं मिलता।

संक्षिप्त जैन इतिहास भाग ३ खंड ४ पृष्ठ ८१ पर लिखा है कि—"इन कलचुरि राजाओं का सम्पूर्ण समय अपने विरोधी चालुक्य, यादव और होयसल नरेशों से युद्ध करने में ही बीता। यादव नरेश जैन धर्म के विरोधी थे, उन्होंने जैन मन्दिरों को भूमि शव मन्दिरों को दे डाली थी। चालुक्य तैलप तृतीय का पुत्र सोमेश्वर चालुक्य भी अपने पूर्वजों का राज्य कलचुरियों से वापस लेने में समर्थ हुआ, किन्तु कलचुरियों का पूर्ण पराभव होयसल नरेश बल्लाल द्वितीय के हाथों हुआ। इनके पतन मे कारण मूल धार्मिक असहिष्णुता के साथ साथ कलचुरियों की आन्तरिक छिन्न भिन्नता था।"

"एक लेख से प्रकट होता है कि कलचुरि नरेश के सामन्त और उनकी प्रजा बहादुरी से लड़े थे। यहाँ तक कि नल्लिबाड़ो का एक तेली एविसेट्टी का पुत्र इलेयम्म भी वीरता पूर्वक युद्ध में लड़ा था। उसने शत्रु सैन्य को आगे बढ़ने ही नहीं दिया। वह

बहादुरी से लड़ते हुये वीरगति को प्राप्त हुआ किन्तु कलचुरियों के शत्रु अनेक और बहुसंख्यक थे, वे उनसे अपने राज्य की कहाँ तक रक्षा करते। उनका आदर्श शिलालेख के निम्नश्लोक में गर्भित है:—

"जितेन लभ्यते लक्ष्मी, मृतेनापि सुरांगना।
क्षण विध्वंसिनि काये, का चिन्ता मरणे रणे॥

## ३—दक्षिण का कलभ्र वंश

जैसा कि हम आरम्भ मे लिख आये हैं। सन् ई० २४८ में त्रैकूटकों ने वाकाटकों और गुप्तो के विरुद्ध,विद्रोह करके स्वतंत्रता प्राप्त की थी। उस समय देश की परिस्थिति के अनुसार धारण किये हुए धर्म से प्रभावित होने के कारण इन त्रैकूटकों में से दहसेन और व्याघ्रसेन नामक राजाओं ने अपने अपने समय मे अश्वमेध यज्ञ किये थे। स्वतंत्रता-सूचक अपने संवत् की भी स्थापना की थी और सिक्के चलाये थे। यद्यपि उनकी स्वतन्त्रता स्थायी नहीं हो सकी थी, क्योंकि वे तत्काल ही फिर वाकाटकों द्वारा अधीन किये गये थे; किन्तु उनके अन्तःकरण में उदित हुई स्वतंत्रता की भावना दबाई नही जा सकी। कालान्तर में वे वाकाटको और गुप्तों के प्रभुत्व का नाश कर स्वतंत्र हो गये और अपने बाहुबल से उन्होंने एक बार भारत के अधिकांश भाग को अपने अधीन कर अपना साम्राज्य स्थापित किया।

सन् ई० २४८ से लेकर और त्रिपुरी साम्राज्य के शक्तिशाली होने के समय तक में इनकी अनेक शाखाएँ बनी थीं। इन्होंने त्रैकूटक नाम वाकाटकों की देखा देखी धारण किया। यह वाकाटक वकाट या बकाट के रहने वाले थे। जो आधुनिक पन्ना

राज्य में किलकिला (पन्ना) के पास है। इस वाकाटक वंश या साम्राज्य का संस्थापक विन्ध्यशक्ति भारशिवों का सामन्त था, जिसने भारशिवा के शक्तिहीन होने के समय राज्य की स्थापना कर उसे साम्राज्य के रूप में पहुँचाया था। वाकाटकों के शक्तिहीन होने के समय त्रैकूटकों ने फिर सिर उठाया। उन्होंने अपने सिर से करद राजा के रूप में रहे आने का भार उतार कर फेंक दिया। इस प्रयत्न में शताब्दियाँ लगीं। इस बीच इनकी अनेक शाखाओं ने जन्म लिया था। त्रिपुरी की जिन दो शाखाओं की चर्चा पिछले पन्नों में की जा चुकी है, उनके स्थापित होने से भी पूर्व इनकी अनेक शाखायें स्थापित हुई थीं, जिनका विवरण आपको आगे के पन्नों में मिलेगा

त्रिपुरी के कोकल्लदेव प्रथम ने जिस समय त्रिपुरी में राज्य की स्थापना की उससे भी पूर्व अर्थात् बुद्धराज, कृष्णराज और शंकरगण आदि के समय के लगभग तथा उससे भी पूर्व इनकी अनेक शाखायें फटी थीं। यह शाखाएँ सुदूर दक्षिण के पाड्य प्रदेश तक निर्बाध गति से पहुँच गई थीं और सुदूर पश्चिम के कन्दहार तथा उत्तर पश्चिम के काश्मीर प्रदेश तथा टिहरी गढ़वाल तक कालान्तर में स्थापित हुई थीं। आकांक्षाओं के वेग ने इन्हें सर्वत्र ऊँचा उठाया था। कलभ्र वंश, जिसका कि इस स्थान पर उल्लेख किया जा रहा है, इन्हीं त्रैकूटकों की एक शाखा थी। ईसवी ५वीं और ६ठवीं शताब्दी के बीच चेर, चोल, और पाड्य नरेशों को इन कलभ्र राजाओं ने युद्ध में परास्त कर सम्पूर्ण तामिल प्रदेश पर अधिकार कर लिया था।

कहते हैं, कलभ्र राजा जैन हो गये थे, परन्तु मेरा दृष्टिकोण है कि यह तो राजाओं का स्वाभाविक धर्म है कि वह सदैव हर धर्म से प्रेम रखता रहे, परन्तु वह स्वयं अपने लिये किसी एक धर्म को चुन सकता है। अतएव कलभ्रवंश के राजा जैन होने

से पहले शैव थे। संक्षिप्त जैन इतिहास पृष्ठ १४ भाग ३ खण्ड २ पर कलभ्रों का उल्लेख करते हुये साहित्य मनीषी श्री कामता प्रसाद जैन एम० आर० ए० एम० लिखते हैं :—

"पाड्य देश में कलभ्र राजवंश का आश्रय पाकर जैनधर्म खूब उन्नत हुआ। ई० ५वीं-६वीं शताब्दी में कलभ्रों का आक्रमण दक्षिण भारत पर हुआ और उन्होंने चोल, चेर एवं पांड्य राजाओं को परास्त करके समग्र तामिल देश पर अधिकार कर लिया था। कहा जाता है कि कलभ्रगण कर्णाटक देश के निवासी और 'कल्लर' जाति के लोग थे। पांड्य राजाओं को जीतने के कारण उन्होंने 'मारन' और 'नेदुमारन' विरुद ( उपाधियाँ ) धारण की थीं। इनके अतिरिक्त इनके दो विरुद और थे। जो "कलभ्र कल्वन" और "मुत्त रैयन" था। जिसका प्रयोजन "त्रिकलिंगाधिपति" अर्थात् तीन देशों के स्वामी से है। त्रैकूटकों ने पाँचवीं छठवीं शताब्दी में त्रिकलिंगाधिपति की उपाधि धारण भी की थी।

"पेरिय पुराणम्" नामक ग्रन्थ में उन्हें कर्णाटक देश का राजा लिखा है। कामताप्रसाद जी जैन लिखते हैं, निसन्देह उनका राज्यशासन तीनों ही चेर, चोल, पांड्य देशों पर निर्बाध चलता था। जैसे ही वह तामिल देश में अधिकृत हुये, कलभ्रो ने जैन धर्म को अपना लिया। उस समय वहाँ जैनों की संख्या भी अधिक थी। उनके सहयोग से प्रभावित होकर कहा जाता है कि कलभ्रों ने शैव धर्माचार्यों को दण्डित किया था। यह समय जैन धर्म के परम उत्कर्ष का था। इसी समय प्रसिद्ध तामिल ग्रंथ "नालदियार" जैनाचार्यों द्वारा रचा गया था। इस ग्रन्थ में दो स्थलों पर ऐसे उल्लेख हैं, जिनसे पता चलता है कि कलभ्र जैन धर्मानुयायी और तामिल साहित्य के संरक्षक थे। 'नालदियार' ग्रन्थ में नीति शास्त्र विषयक चार सौ पद अंकित है। कहते हैं

इन्हें चार सौ जैन मुनियों ने रचा था। और आज जिनका प्रचार दक्षिण भारत के प्रत्येक घर में हुआ मिलता है। कलभ्रों की राज्य श्री का अन्त पल्लवों ने किया। पल्लवों के आगमन ने जैनधर्म को भी पाण्ड्यदेश से श्री विहीन कर दिया। मदुरा ही इस समय तक जैनधर्म का मूल केन्द्र स्थान था, उसके बाद वहाँ ब्राह्मण धर्म का प्रभाव बढ़ा।"

कलभ्र राजाओं की वंशावली इस समय तक नहीं प्राप्त हुई है। भविष्य में उद्योग किया जायगा। पल्लव जिनकी ऊपर चर्चा की गई है और जिन्होंने नवीं शताब्दी में कलभ्रों का अन्त किया था। प्रारम्भ में काञ्ची के शासक थे। कांची के शासक को 'तिरयन्' कहा जाता था। जब कलभ्र आये और पल्लव करद राजा के रूप में रहे तो इन्हें तोण्डैमन् की उपाधि से विभूषित किया गया। दक्षिण के संगम साहित्य में काञ्ची के शासकों की चर्चा है। जिसमें इन उपाधियों का भी विवरण प्राप्त होता है।

पुदुकोट्टा के वर्तमान महाराजा तोंडमान् भैरवसिंह देव की तोंडमान उपाधि उपरोक्त 'तोण्डैमन्" ही है। परन्तु यह कांची के शासक होने के कारण नहीं, प्रत्युत यह तोंडिक जाति है। त्रैकूटक अर्थात् कलचुरि भी इसी तोंडिक जाति के थे। पुराणों में इन्हीं का उल्लेख तुण्डिकेर करके हुआ है, और जो हैहयवंशी यादवों की एक शाखा है।

## ४—कन्दहार और काश्मीर का राजवंश

इस पुस्तक के आरम्भ में जिस दहसेन त्रैकूटक की चर्चा की गई है, उसके वंशज अथवा उसकी जाति के लोग उस समय और उसके बाद भी सारे भारत देश में फैले हुये थे और रा- में भी फैलते रहे हैं, जैसा कि इतिहास के अन्वेषण से स्पष्ट हो आता है। कलचुरियों के सुविस्तृत इतिहास से यह पुष्ट हो चुका है।

है कि बंगाल से लेकर गुजरात तक और कन्या कुमारी से लेकर काश्मीर तक इस वंश के लोगों ने देश विजय किये थे; इसलिये इनका और सुदूर उत्तर पश्चिम में पहुंच जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं हो सकती। सौराष्ट्र पर त्रैकूटकों का अधिकार हम यशःकर्णदेव के समय तक लगातार देख चुके हैं।

रायबहादुर श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा "प्राचीन मुद्रा" पृ० २४१ पर लिखते हैं—" गुप्त साम्राज्य के नष्ट होने के उपरान्त उत्तरापथ के भिन्न प्रदेश कुछ दिनों के लिये हर्षवर्द्धन के अधिकार में आ गए थे। परन्तु हर्ष की मृत्यु के उपरान्त तुरन्त ही फिर वे सब प्रदेश बहुत से छोटे छोटे राज्यों में विभक्त हो गए थे। ईसवी नवीं शताब्दी के आरम्भ में गौड़ राजा धर्मपाल और देवपाल ने उत्तरापथ में एकाधिपत्य स्थापित किया था। परन्तु वह भी अधिक समय तक स्थायी न रह सका। नवीं शताब्दी के मध्य में मरुवासी गुर्जर जाति के राजा प्रथम भोजदेव ने कान्यकुब्ज पर अधिकार कर के एक नया राज्य स्थापित किया था। ईसवी ग्यारहवीं शताब्दी के प्रथम पाद तक इस साम्राज्य के ध्वंसावशेष पर गुर्जर प्रतिहार वंशी राजाओं का राज्य था।

" कुजुल कदफिस, विमकदफिस और कनिष्क आदि कुशण वंशीय सम्राटों ने पूर्व में जो विशाल साम्राज्य स्थापित किया था, उसके नष्ट होने पर कनिष्क के वंशजों ने अफगानिस्तान में आश्रय लिया था। उसके वंशज ईसवी ग्यारहवीं शताब्दी तक अफगानिस्तान के पहाड़ी प्रदेशों में राज्य करते थे। सातवीं शताब्दी में चीनी यात्री युवनच्वांग ने और दसवीं शताब्दी में मुसलमान विद्वान् अब्दुलरेहान अलबेरूनी ने अफगानिस्तान के राजाओं को कनिष्क के वंशज लिखा था। अलबेरूनी ने लिखा है कि इस राजवंश का एक मंत्री राजा को सिंहासन से

उतार कर स्वयं राना बन गया था। काबुल पहले इसी राजवंश का राजनगर था। मुसलमानों ने याकूब लाइस के नेतृत्व में हिजरी सन् २५७ (ई० सन् ८७० ७१) में काबुल पर अधिकार किया था। इसके बाद उद्भाडपुर इस राजवंश की राजधानी बना था।

कल्हण मिश्र की राजतरंगिणी में उद्भाडपुर के शाही राजाओं का उल्लेख है। कनिष्क के वंशधर तुरुष्क शाही वंश के कहलाते थे और मंत्री का वंश हिन्दू शाही वंश कहलाता था। जिस मंत्री ने राजा को सिंहासन से उतार कर स्वयं राज्य पर अधिकार किया था, अलबेरूनी के मतानुसार वह 'कल्लर' जाति का था। राजतरंगिणी के अंग्रेजी अनुवादक सर आरेल स्टीन का अनुमान है कि राजतरंगिणी का लल्लियशाही और कल्लर दोनों एक ही व्यक्ति हैं। कल्हण ने एक स्थान पर लल्लिय के पुत्र कमलुक का उल्लेख किया है। (इससे समझ पड़ता है लल्लिय और कल्लर दो व्यक्ति थे) अलबेरूनी के ग्रंथ में उसका नाम कमलू लिखा है। लल्लिय और कमलुक के सिवा कल्हण मिश्र ने भीमपालशाह और त्रिलोचनपालशाह नामक उद्भाड के शाही वंश के दो राजाओं का उल्लेख किया है। भीमपालशाह काश्मीर के राजा क्षेमगुप्तवंशीय क्षेमगुप्त की स्त्री दिद्दा देवी का दादा था। त्रिलोचनपाल शाही वंश का अन्तिम राजा था। गांधार में हिन्दू शाही राज्य के नष्ट हो जाने के उपरान्त अलबेरूनी ने लिखा है "यह हिन्दू शाही राजवंश नष्ट हो गया है और अब इस वंश का कोई नहीं बचा। यह वंश समृद्धि के समय कभी अच्छे काम करने में पीछे नहीं हटा। इस वंश के लोग सदाचार और बहुत सुन्दर थे। कल्हण मिश्र ने राजतरंगिणी के सातवें तरंग में शाही राजवंश के अध:पतन के लिये पाँच श्लोकों में विलाप किया है—

गते त्रिलोचने दूरमनेव रिपुर्महबलम्।

प्रचंडचंडालचमूशलभच्छायमानशे ॥
संप्राप्तविजयोऽप्यासीन्न हम्मीरः समुच्छ्वसन् ।
श्रीत्रिलोचनपालस्य स्मरञ्छौर्यमनानुपम् ॥
त्रिलोचनोऽपिसंश्रित्य हास्तिकं स्वपदाद्युतः ।
सयत्नोऽभून्महोत्साहः प्रत्याहर्तुं जयश्रियम् ॥
यथा नामापि निर्नष्टं शीघ्रं शाहिश्रियस्तथा ।
इह प्रासंगिकत्वेन वर्णितं न सविस्तरम् ॥
स्वप्नेऽपि यत्सम्भाव्यं यत्र भग्ना मनोरथाः ।
हेलया तद्विदघतो नामाध्यं विद्यतेविधेः ॥

सर एलेकजेण्डर कनिंघम ने उद्भांडपुर के ध्वंसावशेष का आविष्कार करके उसका विस्तृत विवरण लिखा था। कनिंघम से पहले पंजाब-केसरी महाराज रणजीतसिंह के सेनापति जनरल कोर्ट ने और उनके बाद सन् १८६१ में सर जनरल आस्टेन ने उद्भांडपुर का ध्वसावशेष देखा था। उद्भांडपुर से मिला हुआ एक शिलालेख कलकत्ते के अजायबघर में रखा है। काबुल अथवा उद्भांडपुर से शाही राजवंश के पाँच राजाओं के सिक्के मिले हैं। पहले प्रकार के सिक्कों पर एक ओर बैल और दूसरी ओर एक घुड़सवार की मूर्ति है। दूसरे प्रकार के सिक्कों पर एक ओर हाथी और दूसरी ओर सिंह की मूर्ति है। और तीसरे प्रकार के सिक्कों पर एक ओर सिंह और दूसरी ओर मोर की मूर्ति है। अंतिम प्रकार का केवल एक ही सिक्का मिला है।"

सन् ई० ६३० से लेकर ६४७ तक हर्ष ने भारत पर शासन किया था। हर्ष प्रतापी राजा था। इसके समय में चीनी यात्री युवनच्वांग भारत आया था। जब वह भारत की उत्तरी पश्चिमी सीमा से गुजरा तब वहाँ काबुल और पश्चिमी गान्धार में एक क्षत्रिय राजा राज्य करता था। इसका वर्णन उसने अपनी यात्रा वृत्तान्त में किया है। ठीक उसी समय काश्मीर में दुर्लभवर्द्धन ने

कर्कोट राजवंश की स्थापना की थी। जिसकी सीमा नमक-पहाड़ियों तक थी। *

ईरान मे राजा को 'शाह' कहते हैं, इसी से काबुल के क्षत्रिय और ब्राह्मण राजा भी शाह कहलाते थे। वहाँ के क्षत्रिय राजा बौद्ध और शैव मत के मानने वाले थे। और ब्राह्मण राजा वैदिक मत के अथवा विष्णु के उपासक थे।

हिन्दू भारत का उत्कर्ष द्वितीय भाग पृष्ठ २४८ पर श्रीचिन्तामणि विनायक वैद्य एम० ए० लिखते हैं —"काबुल में जब ब्राह्मणी राज्य था, तब कन्दहार में क्षत्रियों का राज्य था। कन्दहार में राज्य करने वाले क्षत्रिय राजपूत भट्टी वंश के थे। मुसलमानी ग्रन्थों मे कन्दहार का इतिहास लिखा मिलता है।

"उक्त छोटे छोटे राज्य सिन्धु नद के इस पार थे। अब सिन्धु नद के दक्षिणतट के राज्यों की स्थिति का निरीक्षण करना उचित होगा। काश्मीर राज्य का समग्र इतिहास इस ग्रंथ के पहिले भाग में लिखा गया है। कर्कोट वंश के जयापीड राजा का शासन काल ई० सन ७५१ से ७८२ तक ( वि० स० ८०८ ८३९ ) था। इसके पश्चात् उस वंश का ह्रास ही हो चला और वहाँ के राजाओं ने अपने राज्य से बाहर की उथल पुथल की ओर विशेष ध्यान भी नहीं दिया।

"सम्भवत इसी से कर्कोटवंश किसी तरह ई० सन् ८५५ (वि० स० ९१२) तक राज्य कर सका। फिर काश्मीर का राज्य उत्पलवंशीय अवन्तिवर्मा नामक योग्य राजा के हाथ आया।"

श्री जयचन्द्र विद्यालंकार इतिहास प्रवेश पृ० १८३ पर लिखते हैं —"पहला उत्पल राजा अवन्तिवर्मा (८५५ ८८३ ई०) बड़ा न्यायी और सुशासक था। उसके सुय्य नाम के एक मंत्री ने काश्मीर की नदियों मे बाँध बंधवाये, नहरें खुदवायीं

---

* श्री जयचन्द्र विद्यालंकार कृत इतिहास प्रवेश पृ० १८८

और दल-दलों को सुखाकर सैकड़ों नये गाँव बसा दिये। कश्मीर की उपज तब इतनी बढ़ी कि धान की कीमत एकाएक ५ वाँ हिस्सा रह गई। सुय्य को लोगों ने अन्नपति का पदवी दी।

"अवन्तिवर्मा का बेटा शंकरवर्मा (८८३-९०२ ई०) भी बड़ा विजेता था। उसने पूरब और मिहिर भोज का मुकाबला किया और पश्चिम की तरफ उरशा (हजारा) और काबुल का किला ले लिया। काबुल शहर और इलाका हिन्दू राजाओं के पास रहा, किन्तु वे अपनी राजधानी सिन्ध नदी के पुराने घाट उद्भांडपुर ले गये। उद्भांडपुर अटक के १६ मील उत्तर है और अब ओहिन्द कहलाता है। वहाँ ८८३ ई० में अन्तिम राजा से उसके ब्राह्मण मंत्री लल्लिय ने राज्य छीन लिया। लल्लिय के वंशज ब्राह्मण शाहि कहलाये। शंकरवर्मा ने लल्लिय को जीतकर उसे अपना सामन्त बनाया। अरसे तक शाहियों का राज्य काश्मीरियों की अधीनता में रहा। मिहिर भोज से शंकरवर्मा की लड़ाई कांगड़े के इलाके में हुई होगी।"

श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य एम० ए० हि० भा० का उत्कर्ष भाग २ पृष्ठ २६० पर लिखते हैं—"कन्दहार के राजा को 'हाहज' कहते है। वास्तव में सभी राजाओ की उपाधि—'हाहज' है। कन्दहार रहबूदों (राजपूतो) का देश कहा जाता है। काश्मीर के राजा की उपाधि 'राय' है। और वह सिन्ध प्रान्त का ही एक भाग है।" वैद्य जी आगे फिर लिखते हैं—"हाहज क्या है, कहा नही जा सकता। परन्तु इस अवतरण से सिद्ध होता है कि उस समय कन्दहार मे राजपूतो का राज्य था।"

हाहज क्या है, वैद्य जी जैसे इतिहास विशारद की समझ में नहीं आया, यह देख कर मुझे आश्चर्य है। 'हैहय' जो हाहज का अरबी लेखक के उच्चारण में रूपान्तर है, और उसी अरबी लेखक

के शब्दों में वह कलवार वश का है, जिसका उद्धरण श्री ओझा जी लिखित प्राचीन मुद्रा पृष्ठ २४३ से ऊपर दिया गया है। और स्वय वैद्य जी इसी पुस्तक के पृष्ठ २४८ पर उस वश को भट्टी वश का मान चुके हैं, जिनका निकास हैहय वश के पाँच कुलों में से शौण्डिक कुल से हुआ था। भाटिया आज भी सोडवश से अपने को उत्पन्न हुआ मानते हैं और भट्टी साडी कलचुरियों का पर्यायवाची नाम है।

इस तरह कल्हण की राजतरंगिणी और वर्तमान इतिहास विशारदों की सम्मत्यानुसार यह प्रमाणित हो जाता है कि तत्कालीन कन्दहार के राजा हैहय वश के कलचुरियों के जाति भाइ थे।

रायबहादुर श्री प० गौरीशकर हीराचद जी ओझा ने अपने प्राचीन मुद्रा नामक पुस्तक के २५४ पृष्ठ पर उत्पल वशीय जिन राजा और रानी के साथ हुये सिक्का का उल्लेख किया है, उनमें रानी दिद्दा का भी नाम आता है और ऊपर उल्लिखित कन्दहार नरेश त्रिलोचनपाल शाह इसी महारानी दिद्दा का दादा था। इससे और भी स्पष्ट हो जाता है कि काश्मीर का उत्पल वश जिसे कि राजतरंगिणी में स्पष्ट कल्यपाल वश कहा गया है, और कन्दहार के क्षत्रिय हिन्दू शाही वश एक जाति के लोग थे।

## ५—भाटी वश

हम पहले पृष्ठों में लिख चुके हैं कि भाटी लोग भाटी क्षत्रिय हैं। पश्चिमी पंजाब में मुलतान के समीप वर्तमान भटनेर में उनका राज्य था। उनकी राजधानी का नाम भटनेर था। उस वश में भाटी नामक राजा के उत्पन्न होने के कारण यह लोग भाटी कहे जाने लगे। कन्दहार के जिन हैहयों का हम ऊपर उल्लेख कर आये हैं, भाटी लोग उन्हीं के वंशज

हैं। तन्नोत * राजधानी वर्तमान समय में जैसलमेर रियासत में एक परगना है। जो जैसलमेर से १०० मील उत्तर पश्चिम में व रामगढ़ (दक्षिणी पंजाब) के उत्तर में है। यहाँ बहुत से टीवे हैं और काश्त विलकुल नहीं होती।

पेशावर के समीप का वह प्रदेश जो वाद में ओहिन्द के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इन्हीं भाटियों की कन्दहार से हटने के वाद राजधानी वना था। पेशावर से दक्षिण पश्चिम स्थित गजनी इस वंश के पूर्वज महाराज गजपाल द्वारा निर्मित हुई थी। परन्तु यह राज्य स्थिर न रह सका। खुरासानी मुसलमानों के निरन्तर आक्रमण और घातक प्रहार के कारण यह पीछे हटते रहे और धीरे-धीरे यह तन्नोत में स्थित हुये थे। सन् ई० १००१ में सुबुक्तगीन के पुत्र महमूद गजनवी ने पुरुषपुर (पेशावर) तक अपने राज्य का विस्तार किया था। ओहिन्द के ब्राह्मण शाही वंश के राजा जयपाल और उसके वेटे आनन्दपाल को अनेक सरदारों सहित उसने कैद कर लिया। पुरुषपुर ओहिन्द, अटक और उदुभांडपुर (उच्च=तन्नोत से सटा हुआ) तक के कुल प्रदेश पर उसने अधिकार कर लिया।

ओहिन्द के बाद तन्नोत और मुलतान बस यही दो पड़ोसी राज्य बच रहे थे। महमूद ने पहले तन्नोत पर ही चढ़ाई की। किले के बाहर तीन दिन के घोर युद्ध के वाद तन्नोत का राजा विजयपाल मारा गया, किन्तु विजेता के हाथ कुछ लगा नहीं। किले पर वह अधिकार भी न कर सका। लौटते समय उसकी सेना बुरी तरह सताई गई। स्वय सुलतान महमूद गजनवी अपनी कीमती जान बड़ी मुश्किल से बचा सका। †

---

* राजा तँवनपाल ने इसे बसाया था, जो इसी वंश का था।

† देखिये इतिहास प्रवेश पृ० १८८, जगदीशसिंह गहलोत एम० आर०ए०एस० कृत राजपुताने का इति० पृ० ५६७-५६८ और ६१४।

ब्राह्मण शाही वंश का राजा जयपाल जो कि सरदारों और अपने बेटे आनन्दपाल की कैद में आ चुका था। आनन्दपाल को महमूद के यहाँ धरोहर के रूप में छोड़कर आया और आत्म-ग्लानि के कारण आग में जल मरा। तब महमूद ने आनन्दपाल को छोड़ दिया। आनन्दपाल नमक की पहाड़ियों के पास भेरा में राज्य का निर्माण कर राज्य करने लगा।

महमूद ने अब मुलतान पर चढाई करने की बात सोची। रास्ता आनन्दपाल के राज्य में से होकर था। उसने आनन्दपाल से उसके राज्य में से होकर जाने की आज्ञा माँगी। आनन्दपाल ने आज्ञा नहीं दी, तब महमूद ने उसके राज्य में घुसकर उसे उजाड़ना शुरू किया। कई मुठभेड हुई। आनन्दपाल हार गया और काश्मीर की पहाड़ियों की ओर चला गया। अब महमूद ने मुलतान की ओर मुख किया। यह देख मुलतान का शासक भाग निकला। मुलतान पर महमूद ने अधिकार कर लिया।

श्रीजयचन्द्र जी विद्यालंकार इतिहास प्रवेश पृ० १७६ पर लिखते हैं — 'महमूद की इन चढाइयों के बावजूद भी पंजाब के शाही राज्य टूटे नहीं थे। महमूद की एक और चढाई में आनन्दपाल मारा गया। उसके बेटे त्रिलोचनपाल ने वार्षिक कर देना स्वीकार किया।"

विनयपाल जो महाराजा भाटी की चौथी पीढ़ी बाद उत्पन्न हुआ था और महमूद गजनवी का समकालीन तथा उसके साथ युद्ध करता हुआ मारा गया था। वर्तमान करौली और जैसलमेर रियासत का पूर्वज था। इन्हीं विनयपाल की चौथी पीढी में महाराजा जसपाल जिन्हें जैसलदेव भी कहा जाता है उत्पन्न हुये थे, जो बड़े भाई होने पर भी गद्दी पर नहीं बैठने पाये। अतएव अपने हजारों अनुयायियों के साथ यह जैसलमेर की तत्कालीन राजधानी लोद्रवा या लोधरा से निकल आये और उसके

२० मील दूर एक छोटी सी पहाड़ी पर किला बना कर वहाँ अपनी राजधानी प्रतिष्ठित की। वही गढ़ आज जैसलमेर के नाम प्रसिद्ध हैं। जैसलमेर से समय समय पर लाखों मनुष्यों का निष्कासन हुआ है, जो जैसलमेर के भाटियों के वंशज और उनके जाति भाई थे। जो सन् ११५० ई० अर्थात् आज से हजार वर्ष पूर्व की घटना है। इतने लम्बे समय में इनके अनुयायियों और जाति भाइयों की पर्याप्त संख्या का होना अवश्यम्भावी है। इतिहासकारों का अभिमत है कि आजकल के लोड़ी जसवाल इन्हीं के अनुयायी और जाति भाई हैं।

श्री जगदीशसिंह गहलोत ने अपने लिखे राजपूताने के इतिहास पृष्ठ ६५७ के फुटनोट में जस्सा खाँप (शाखा) का उल्लेख किया है और उसकी उत्पत्ति जैसलमेर के तत्कालीन महारावल से मानी है। आगे इसी पुस्तक के पृष्ठ ७०६ और ७०७ पर राजपूताने के प्रवासी भाटी राजवंशों में सिरमौर, पटियाला, और कपूरथला का उल्लेख किया है। परन्तु कपूरथला महाराज की उत्पत्ति के सम्बन्ध में उन्होंने जिस दृष्टिकोण का सहारा लिया है, उससे हम सहमत नहीं हैं।

## ६—टिहरी-गढ़वाल

टिहरी-गढ़वाल हिमालय की गोद में बसा प्रदेश है। इसका क्षेत्रफल ४२०० वर्ग मील और जन-संख्या लगभग ५ लाख है। यह बिलकुल पहाड़ी प्रदेश है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह बहुत प्राचीन प्रदेश है। कई प्रसिद्ध ऋषि मुनियों ने इसे अपनी तपस्या और साधना का स्थल बनाया था। प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता श्री जयचन्द्र विद्यालंकार का कथन है कि कण्व ऋषि का आश्रम भी इसी उत्तराखण्ड में था। फिर भी इसका इतिहास स्पष्ट नहीं है। सातवीं शताब्दी में प्रसिद्ध चीनी यात्री के कथनानुसार यह

प्रदेश ब्रह्मपुरा साम्राज्य के अन्तर्गत था। १५वीं शताब्दी में महीपालशाह नामक राजा ने गढ़वाल की प्राचीन राजधानी श्रीनगर की स्थापना की और अपनी पूर्ण स्वतंत्रता स्थापित की। उनके पश्चात् अजयपाल नामक राजा ने समस्त गढ़ों का एकीकरण किया जिनमें अनेक छोटे छोटे राज्य स्थापित थे। जो आवागमन की कठिनाई के कारण स्वतन्त्र थे। ऐसे गढ़ों की संख्या लगभग ५२ कही जाती है। इसीलिये इस प्रदेश का नाम गढ़वाल है।

अलमोड़ा के चाँद राजाओं के साथ गढ़वाल के राजाओं की अनेक बार भिड़न्त हुई है। १८१५ के गोरखा युद्ध तक आज के गढ़वाल और टिहरी-गढ़वाल दोनों जिलों पर एक ही वंश के राजाओं का शासन था। ये दिल्ली के शासकों को थोड़ा सा कर दिया करते थे। ये लोग वस्तुतः पंवार वंश में उत्पन्न हुये हैं। इस पीढ़ी का पहला राजा कनकपाल था। शाह की उपाधि ३७वें शासक कल्याणशाह को दिल्ली के सम्राट् नसीरुद्दीन द्वारा दी गई थी। जो अब तक चली आ रही है।

१८०४ में गढ़वाल पर गुरखों ने आक्रमण किया। गढ़वाल भारी विपत्ति में फंसा रहा। सन् १८१५ में अंग्रेजों की सहायता से गुरखों को पराजित किया गया। तब से गढ़वाल दो भागों में विभक्त हो गया। जिला गढ़वाल और देहरादून अंग्रेजों ने अपने अधीन रक्खा और टिहरी गढ़वाल की नई राजधानी का निर्माण हुआ। जो टेढ़ी मेढ़ी बहती हुई गंगा के तट पर आज भी स्थित है। इसी से इस नवीन राजधानी का नाम टेहरी पड़ा।

टिहरी गढ़वाल चारों ओर से जिला देहरादून गढ़वाल, तिब्बत व हिमाचल प्रदेश से घिरा हुआ है। यहां की दुर्गम पहाड़ इसको एक दूसरे से पृथक् करते हैं। प्रसिद्ध नदियां, गंगा, यमुना का उद्गम स्थान इसी जिले टिहरी गढ़वाल में ही है।

मन्दाकिनी और अलकनन्दा आदि पवित्र नदियाँ भी क्रमशः रुद्र प्रयाग और देव प्रयाग में गंगाजी से मिलती हैं। ये दोनों ही स्थान धार्मिक माने जाते हैं। जिला गढ़वाल और टिहरी गढ़-वाल में अलकनन्दा ही सीमा का कार्य करती है। सौन्दर्य में टिहरी-गढ़वाल, काश्मीर या काँगड़ा से कम नहीं है। एक से एक बढ़कर मनोहर प्राकृतिक दृश्य यहाँ विद्यमान हैं जिन्हें देखकर बहुत सी प्रेरणाएँ ली जा सकती हैं।

टिहरी गढ़वाल के वर्तमान महाराजा सर मानवेन्द्र शाह हैं, जो अपना आदि पुरुष कनकपाल का मानते हैं। जो महाराजा से ६० वीं पीढ़ी पूर्व हुआ है।

कत्सुरी नाम की समालोचना से यह अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है कि कत्सुरी बनने से पूर्व यह शब्द कटछुरी रहा है। जो कलचुरी का रूपान्तर है। पृथ्वीराज रासो में कटछुरी लिखा है।

'ट' का 'त' और 'छ' का 'स' बिलकुल स्वाभाविक प्रतीत होता है। गुजरात का सोलंखी दक्षिण देश में चालुक्य बन गया है। यह चालुक्य बड़े प्रबल नरेश थे। बघेल कहने और कहलाने से पूर्व बघेलखंड के बघेल=सोलंखी (चालुक्य) ही कहे जाते थे।

यदुवंशीय हैहय क्षत्रियों की 'कलशुण्डि' शाखा जब 'कलसुड़ि' बनकर गुजरात की ओर फैली तो वहाँ जाकर वह 'कड़छुरि बन गई। कालान्तर में वही 'कड़छुरि' 'कटछुरि' और 'कतसुरि' कहलाई है। इस आधार पर यह बहुत निश्चित प्रतीत होता है कि टिहरी गढ़वाल के कतसुरि वंश के शासक हमारे कलचुरि नरेशों के वंशजों में से हैं। रही इस वंश के सूत्रधार महाराज 'कनकपाल' की बात। जो टिहरी के वर्तमान महाराजा से ६० पीढ़ी पूर्व हुये हैं और चन्द्रवंशी है। (देखिये 'भूगोल' मासिक का देशी राज्य अंक की अनुक्रमणिका)। कलचुरि भी चन्द्र-

वंशी थे। जैसलमेर, करौली, पटियाला और कपूरथला सभी चन्द्रवंशी नरेश हैं। यह कनकपाल निश्चय ही जैसलमेर और करौली राज्य के पूर्वज विजयपाल के समकालीन या उनके पूर्व हुये होंगे।

# वंश परम्परा

दीर्घकाल से भी पूर्व—सत्युग में, प्रयाग तीर्थ के सामने—गंगा के उस पार झूँसी के अंचल में आज भी स्थित 'पीहन' ग्राम—प्रतिष्ठानपुर नाम की एक विशाल नगरी थी। जिसे पुरूरवा ऐल * (ऐल लोग मध्य हिमालय में स्थित इलावर्त से आये थे—आर्य थे) की राजधानी होने का गौरव प्राप्त था। पुरूरवा ही इसका प्रतिष्ठाता था। यह पुरूरवा ऐल चन्द्रवंशी था। इस का वंशज ययाति † चक्रवर्ती नरेश था। पैतृक उत्तराधिकार में प्राप्त राज्य का विस्तार कर उसने चक्रवर्ती का पद प्राप्त किया था। इसके पाँच पुत्र—यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु, अनु, और पुरु नाम के थे। वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करने के समय ययाति ने अपने सम्पूर्ण राज्य को पाँच भागों में विभाजित किया और पुरु से अत्यन्त सन्तुष्ट होने के कारण प्रतिष्ठानपुर का राज्य उसे ही दिया। जिसके वंशज आगे चल कर पौरव क्षत्रिय कहे गये।

पौरवों से दक्षिण और पूरब का प्रदेश तुर्वसु को, जहाँ विजेता ययाति से पूर्व सूर्यवंशी कारूप क्षत्रिय राज्य करते थे। और जो उन्हीं के कारण कारूष प्रदेश कहा जाता था। अवशेष रूप में आज भी बाँदा जिले में कारूप प्रदेश करुई तहसील के रूप में वर्तमान है। कारूपों का राज्य वर्तमान 'रेवा' और उसके पूर्व शाहाबाद तक चला गया था।

कारूष प्रदेश के ठीक पश्चिम केन, वेतवा और चम्बल

---

* पुरुरवा के एक पुत्र ने कान्यकुब्ज (कन्नौज) की नींव रक्खी थी।

† ययाति के एक भाई का वंशज काश ने काशी बसाई थी।

नदियों का देश—वर्तमान बुन्देलखंड—यदु को मिला था। चम्बल के उत्तर और यमुना के पश्चिम का प्रदेश द्रुह्यु को, उसके पूर्व गंगा यमुना द्वाब का उत्तरी भाग अर्थात् अयोध्या से पश्चिम का सारा देश अनु के हिस्से पड़ा था।

यदु के वंशज यादव नाम से प्रसिद्ध हुये। कालान्तर में यह वंश खूब फला फूला। शाखा उपशाखाओं ने नित्य नये राज्य और देश की स्थापना की। इन्हीं यदुवंशियों की एक शाखा ने हैहय नाम भी धारण किया। इन हैहयों ने विन्ध्याचल और सातपुड़ा के पश्चिमी भाग—वर्तमान मालवा—में बढ़ कर एक सुविस्तृत राज्य की स्थापना की। एक शाखा जो इतिहास के पृष्ठों में कालान्तर में भोज के नाम से प्रसिद्ध हुई और इन्हीं हैहयों की शाखा थी, इससे भी दक्षिण—वर्तमान बरार—गई। इस शाखा का संयोजक विदर्भ था। इसी विदर्भ के नाम पर वह देश विदर्भ कहा गया।

इतिहास के पृष्ठ इस प्रकार हमें यह सूचित करते हैं कि तत्कालीन यदुवंशियों में नित्य प्रति नूतन राज्य के निर्माण की भावना बड़ी प्रबल हो पड़ी। वे बड़ी तेजी से भारत भूमि में चारों ओर बढ़ने लगे। कठिन परिश्रम और बाहुबल एवं पारस्परिक होड़ जैसे उनके लिये खेल हो गया। बड़ी से बड़ी युद्धाग्नि में भी वे झट कूद पड़ते। इस प्रकार लगातार सदियों तक लड़ते रहना और परस्पर ही होड़ कर बैठना, जैसे उनका जन्मगत स्वभाव बन गया। उनकी इस प्रवृत्ति का दर्शन उनके वंशजों में आज भी मौजूद है और यही कारण है कि उनकी अपरिमित शक्ति और बल का जो परिणाम होना चाहिये था, वह न हो सका। छोटी छोटी टुकड़ियों में, छोटी छोटी सत्ताओं में और छोटे छोटे उद्योगों में ही उनका भाग्य विभाजित आज तक मौजूद है। यद्यपि महाभारत काल में योगिश्रेष्ठ श्रीकृष्ण ने इन्हें एक सूत्र में बांधने

के अनेक उपाय किये, किन्तु वह न पूर्ण हो ही नहीं सका। *

इधर अयोध्या के सूर्यवंशी भी अपनी उन्नति और राज्य विस्तार की ओर समुख हुये। यदु से उत्तराधिकार रूप में मिले पुरातनराज्य का स्वामी शशविन्दु इस काल यदुवंशियों में श्रेष्ठ था। उसने अपने यौवन काल में अपने राज्य का पर्याप्त विस्तार किया और विभिन्न छोटे छोटे राजाओं को अपने अधीन कर चक्रवर्ती का पद प्राप्त कर लिया। द्रुहुवंशी और पौरव राज्य इस होड़ में समाप्त हो गये।

शशविन्दु की ढलती अवस्था में अयोध्या का राजा मान्धाता युवावस्था में आया। उसने भारत दिग्विजय का सकल्प किया। विन्दुमती शशविन्दु की ज्येष्ठ कन्या थी। उसने मान्धाता से इसी कन्या का विवाह सम्बन्ध कर सूर्यवंश से मैत्री स्थापित कर ली। अपने पुत्रों और सैन्य बल से मान्धाता की सहायता कर शशविन्दु ने मान्धाता को सार्वभौम सम्राट् बना दिया। मान्धाता की महत्त्वकांक्षाओं में इस प्रकार योग देकर शशविन्दु सुखी सुखी स्वर्ग गया।

मान्धाता का सर्वप्रथम सार्वभौम समाट होने का यह गौरव देर तक स्थिर न रह सका। शीघ्र ही यदुवंशोय हैहयो ने अपनी शक्ति सकलित कर महिष्मन्त के नेतृत्व में परिचालित सैन्य बल द्वारा मान्धाता के पुत्र पुरुकुत्स द्वारा संचालित रेवा ( नर्मदा ) के बीच परियात्र टापू पर स्थित प्राचीन साहंजनी तत्कालीन मान्धाता पर अधिकार कर लिया। उसने उसमें अनेक परिवर्तन किये और उस सुन्दर नगरी की प्रसिद्धि फिर महिष्मन्त के नाम पर माहिष्मती करके हुई। † अपने जीवनकाल में महिष्मन्त

* देखिये काशीप्रसाद जायसवाल का हिन्दू राज्यतंत्र पृष्ठ ३१४ से ३१६

† यह नगरी नर्मदा की घाटी में भूमिगत हो गई थी राजपिपला राज्य की ओर से खुदाई हो रही है। अनेक अवशेष मिले हैं।

ने अपनी शक्ति का यथेष्ठ विस्तार किया और उनके उत्तराधिकारी पुत्र भद्रश्रेण्य ने दिग्विजय। उत्तर भारत की काशी नगरी तक हैहय साम्राज्य फैल गया।

मान्धाता के बाद उतर भारत पर यदुवशीय हैहयों ने भद्रश्रेण्य के नेतृत्व में जो आक्रमण आरम्भ किया वह मान्धाता से १६ वीं पीढ़ी पर उत्पन्न राजा सगर के समय तक बराबर चलता रहा। जिसका विवरण नीचे दिया जा रहा है।

मान्धाता लवण नामक एक यदुवशी राजा से युद्ध करते हुये मारा गया। (देखो वाल्मीकि रामायण उत्तरकाड ३७ १२१) इसलिये उसके साम्राज्य में गड़बड़ी मच गई। पुरुकुत्स को छोड़ कर उसके पुत्रों में से कोई भी वैसा न था जो उसके साम्राज्य को सम्हालता। उसका दूसरा पुत्र अम्बरीष ब्राह्मणत्व की ओर बढ रहा था, धीरे धीरे उसके वशज ब्राह्मण हो गये। उन्होंने अपनी महत्त्वकाक्षा को पूर्ण किया। भद्रश्रेण्य के वशजों ने अपने भाई विदर्भ के भोजों को लेकर उत्तर भारत पर निरन्तर धावे किये। काशिराज दिवोदास (प्रथम) ने यद्यपि एक बार भद्रश्रेण्य के पुत्रों से काशी का राज्य वापस ले लिया, परन्तु उसे फिर काशी छोडनी ही पडी। उसने गोमती नदी के किनारे एक नई राजधानी का निर्माण किया और काशी हैहयों के अधिकार में चली गई।

मानव वश की समृद्धि के समय शर्यात नामक एक मानव वशी नरेश ने आधुनिक गुजरात मे एक राज्य की नींव रक्खी थी। शर्यात पुत्र आनर्त के नाम पर वह देश उस समय आनर्त नाम से प्रसिद्ध था। जिसकी राजधानी कुशस्थली (द्वारका) थी। पुण्यजन नामधारी राक्षसों ने आनर्त देश पर आक्रमण किया। शर्यात वशज शार्यात क्षत्रिय मार कर आनर्त से भगा दिये गये। वे हैहय क्षत्रियों के शरणापन्न हुये और कालान्तर में

उन्हीं में विलीन होकर उन्हीं के वंश के एक अंग हो गये।

समयान्तर में हैहय वंश में राजा कृतवीर्य हुआ। कृतवीर्य का पुत्र कार्तवीर्य अर्जुन था। अर्जुन महान् प्रतापी और भारी योद्धा था। उसने लंका पहुँच कर लंका के महान् प्रतापी अधीश्वर महाराज रामन् (रावण) * को अपना बन्दी बना लिया था और वहाँ से ला कर उसे अपने दुर्ग में एक लम्बे समय तक रक्खा था। ऐसे यदुवंशी कार्तवीर्य अर्जुन के सम्बन्ध में पुराण कहते हैं:—

तेनेयं पृथिवी कृत्सना सप्तद्वीप सपत्तना।
सप्तोदधि परिक्षिता क्षात्रेण विधिना जिता॥

वायु० ६४-१५

अर्थात्—उसने सातों द्वीप और सातों समुद्रों से घिरी इस पृथिवी को क्षात्र धर्म से जीता। और—

दशयूप सहस्राणि तेषु द्वीपेषु सप्तसु।
निरर्गलाः स्म निवृत्ताः श्रूयन्ते तस्यधीमतः॥

वायु० ६४-१६

श्रुति ऐसी है कि उसने दस हजार यज्ञ किये थे। सातों द्वीपों में उसके यज्ञ यूप बिना किसी बाधा के खड़े हो गये थे।

नर्मदा के प्रदेशो में उन दिनो भार्गव ब्राह्मण अधिकांश संख्या में बसते थे। (ओंकार मांधाता के समीप भृगु की पहाड़ी आज भी उनकी स्मृति स्वरूप है) यह भार्गव ब्राह्मण कार्तवीर्य अर्जुन के पूर्वजो के काल से चले आये राज्यगुरु के पद पर आसीन थे।

भारत जैसे महादेश में उस समय शासन का कार्य धार्मिक दृष्टिकोणों से बहुत प्रभावित था। शासन में ब्राह्मणो का हाथ प्रधान रहता था। ब्राह्मणो की इच्छा और संकेत

---

* लंका के हर एक राजा रामन् कहे जाते थे। हम लोगो ने रामन् का रावण कर लिया है।

के विरुद्ध कुछ भी करना राजा के वश की बात नहीं होती थी। राजा सभी से कर ले सकता था, किन्तु कर देने के कार्य से ब्राह्मण सर्वथा मुक्त माने जाते थे। ब्राह्मण चाहे कितना भी धनी हो, चाहे कितना ही बडा व्यवसाय कर बैठे, किन्तु राजा का उससे कर वसूल करने का कार्य उस काल में महान् अधर्म था।

हाँ, तो कार्तवीर्य अर्जुन ने, जिसने जीवन पर्यन्त युद्ध, विजय और साम्राज्य के विस्तार का प्रयत्न किया था—उसके अपने भार्गव राज्यगुरु से अनबन हो गई। क्यों अनबन हुई? इस प्रश्न पर आज तक किसी ने प्रकाश नहीं डाला। पुराण भी चुप हैं। इससे समझ पड़ता है। यह प्रश्न निश्चय ही एक राजनीतिज्ञ विभीषिका है। कहते हैं, उसने तत्काल ही दत्त नाम के एक आत्रेय गोत्री ब्राह्मण को राज्यगुरु के पद पर प्रतिष्ठित किया और उसी की मंत्रणा से सात द्वीप और सात समुद्रों पर अपनी पताकाएँ उडाई।

राज्य गुरु का पद साधारण पद नहीं है। महान् है, फिर उस काल में जब कि ब्राह्मणत्व अपनी चरम कोटि पर स्थित था। शक्ति होते हुये महान पद से वंचित किया जा कर कोई कैसे शान्त बैठ सकता है? निश्चय ही कार्तवीर्य अर्जुन और उसके बढ़े वैभव को देख कर राजनीति के दाँव पेंच प्रारम्भ हुये होंगे। इस दाँव पेंच ने अपनी सीमा का भी अतिक्रमण किया होगा। कहते हैं कार्तवीर्य अर्जुन ने उनके धन का अपहरण कर लिया। उनकी कामधेनु छीन ली। एक संघर्ष हो पड़ा। निश्चय ही कार्तवीर्य अर्जुन की सहस्रबाहुओं (सेना) ने भी अन्याय किया होगा। यद्यपि वह नरेश था, किन्तु उस काल का जब कि ब्राह्मणत्व चरम कोटि पर था और धीरे धीरे राज्य ग्रहण करने की ओर भी अग्रसर हो रहा था। तभी तो राजा और भार्गवों में संघर्ष हुआ। यद्यपि राजा बलवान था। उसके

पास सेना थी। लड़ने वाले एक हजार अच्छे योद्धा थे। अस्त्र शस्त्र का कोष था और साथ ही पौरुष से अर्जित साम्राज्य का धन कोष। सबल शत्रु के सम्मुख निर्बल की जो दशा होती है, वही हुआ। जमदग्नि भार्गव के प्राणों का घात हो गया।

जमदग्नि ऋषि थे—ऐसे वैसे ऋषि नहीं, महान् ऋषि—महान् धन सम्पन्न—उनका पुत्र राम शस्त्रधारी था। हर समय उसके कन्धे पर परसा उसके क्षात्रधर्म को प्रधान रूप से अपनाये हुये की सूचना देता था। उधर पुराण कहता है:—

सवै वेगं समुद्रस्य प्रावृट्कालाम्बुजेक्षणः।
क्रीडान्निव सुखोद्विग्नः प्रावृट्काल चकार ह॥
लुलिता क्रीडता येन हेमस्रग्दाम मालिनी।
ऊर्मिभृकुटी सन्नादा शंकिताभ्येदि नर्मदा॥
पुरासता मनुसरन् अवगाढ़ो महार्णवम्।
चक्रारोदुधृत्य वेलान्तं सकलं प्रावृषोद्गनम्॥
तस्य बाहु सहस्रेण क्षोभ्यमाणे महोदधौ।
भवन्ति लीना निश्चेष्टः पातालस्था महासुराः॥
नतनिश्चल मूर्धानो बभूवश्च महोरगाः।
सायाह्ने कदली षण्डा निर्वातस्तिमितः इव॥

"वायु० ६४-२६-३४॥"

कार्तवीर्य अर्जुन समुद्र मे जल विहार करता हुआ आनन्द मे मग्न होकर मानों स्वयं वरुण का रूप धर लेता और सहस्रों बाहुओं से सहस्रों धाराएँ बनाकर जल छहराया करता। नर्मदा नदी भी जिसके जल केलिविहार के समय अपनी चपल तरंगों से मनोहर कल-कल करती हुई और स्वयं सुवर्ण कमलों की माला पहने बड़ी शकित होकर बहा करती थी। समुद्र मे जल-विहार करते समय जब उसकी हजारों बाहुओं से सारा समुद्र एक बार हरबड़ा जाता, उस समय पाताल के रहने वाले बड़े बड़े असुर भी चुपचाप कहीं छिप जाते थे। बड़े बड़े पाताल-

बासी नागों ( कर्कोटकों ) की भयंकर विष ज्वालाएं भी समुद्र की तरंगों से ही शान्त हो जाती थीं। इस प्रकार वह राजा सम्पूर्ण सागर को ऐसा कंपा देता था मानो देव दानवों ने उसे मन्दराचल से फिर मथ दिया हो। उस समय बड़े बड़े विषैले नाग भी उस भयानक राजा को देख कर दूसरी बार कहीं समुद्र न मथा जाय इस भय से डरकर सिर झुकाये ऐसे सहम जाते थे जैसे सायंकाल के समय वायु के शान्त हो जाने पर केले के वृक्ष शान्त होकर खड़े होते हैं।

पुराण के ऊपर उद्धृत श्लोक यद्यपि कार्तवीर्य अर्जुन की प्रशंसा में हैं। उसका साम्राज्य बहुत बड़ा था और दूर देशों से समुद्र के मार्ग द्वारा व्यापार होता था। समुद्र पर भी उसका प्रभुत्व था। अनेक जातियों का उसने पराभव किया था। जिन्हें अपना पराभव और कार्तवीर्य का वैभव खटक रहा था। द्वेष की अग्नि चाहे वह मन्द रही हो चाहे तेज — जल अवश्य रही थी। विदेह, काशी, अवध और कान्यकुब्ज जैसे अनेक बड़े साम्राज्य जो निर्बल थे, किन्तु सुअवसर देख रहे थे। कहते हैं, आपव वशिष्ठ नाम के एक ऋषि ने कार्तवीर्य अर्जुन को शाप भी दिया था। क्या इसे ऋषि द्वारा कार्तवीर्य अर्जुन के साम्राज्य के नाश की कामना नहीं कहा जा सकता? यह आपव वशिष्ठ अवध के राजगुरु थे। जिन्हें कार्तवीर्य अर्जुन के साम्राज्य के प्रति द्वेष और अवध के रक्षा की चिन्ता थी। कान्यकुब्ज, अवध भार्गव तथा वाशिष्ठ सभी परस्पर संबंधी भी थे। अवध की राजकुमारी महाराज सुवेणु की कन्या, रेणुका भार्गव जमदग्नि की पत्नी थी। भार्गवों के मुखिया ऋचीक ने इससे पूर्व ही कान्यकुब्ज के महाराज गाधि की कन्या सत्यवती से विवाह किया था। इसी सत्यवती का पुत्र जमदग्नि था। अवध और माहिष्मती का वैर पुराना और दृढ़ हो गया था। काशी और कान्यकुब्ज भी उसमें

योग दे रहे थे। ऐसे समय में यह बात बहुत संभव है कि जमदग्नि भार्गव को कार्तवीर्य अर्जुन का साम्राज्य विस्तार न रुचा हो। किन्तु यह न रुचने की बात कुछ जॅचती नहीं। कार्तवीर्य अर्जुन के सम्मुख भार्गवों के किसी गुप्त कृत्य का निश्चय ही भंडाफोड़ हुआ होगा, तभी तो उसका चित्त भयानक रूप से विकल हो गया होगा। छोटी मोटी बात के लिये इतना बड़ा विरोध कदापि नहीं हो सकता। राजनीति की गहरी विभीषिका ही इसका मुख्य कारण है। जमदग्नि भार्गव राज्यगुरु जैसे महान् पद से अलग किये गये। असन्तुष्ट व्यक्ति क्या नहीं करता। सर्प कुचल जाने पर ही डसता है। गुप्त उपायों में भार्गवों के हाथ निश्चय ही और आगे बढ़े हैं और तभी तो उनकी कामधेनु ( धनसंपत्ति ) को राज्य ने हरण कर लिया। विरोध बढ़ा। छोटा-मोटा नर-यज्ञ हुआ। इस नर यज्ञ में जमदग्नि का वध हो गया। कामधेनु ने रोते विलापते अपने अंग से खश, बर्बर और किरात आदि अनेक नर-संहार करने वाली जातियों को उत्पन्न कर दिया। कान्यकुब्ज, काशी, अवध और अन्य अनेक नरेशों ने कार्तवीर्य अर्जुन के समृद्ध दीर्घ शासन को उजाड़ना आरम्भ कर दिया। रेणुका का पुत्र राम परशा लेकर नायक बना। उसने कार्तवीर्य अर्जुन के साम्राज्य को छिन्न भिन्न करने और अपने पिता जमदग्नि के वध का बदला चुकाने के लिये धनुर्वेद की सम्पूर्ण शिक्षाओं में श्रेष्ठता प्राप्त की थी। भयानक संग्राम हुआ। ८५ वर्ष के * वृद्ध कार्तवीर्य अर्जुन युद्ध भूमि में स्वर्ग सिधारे। महामुनि नारद ने गाया—

"न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवाः।
यज्ञ-दान तपो योग श्रुतवीर्य जयादिभिः

भा० ९-२३

* हरिवंश १-३३ २३ विष्णु ४-११ १८ वायु० ९४ २३।

वायुपुराण के अनुसार कार्तवीर्य अर्जुन के सौ पुत्र थे। जिनमें से जयध्वज, शूरसेन, वृषभ, मधु और ऊर्जित पाँच महान् शूरवीर हुए।

जयध्वज का पुत्र तालजंघ था और उसके भी सौ पुत्र थे। उनके पश्चात् पाँच कुल चले —

वीतिहोत्र, भोज, अवन्ति, तुण्डिकेर (शौंडिकेय) और तालजंघ।

वायुपुराण का उपरोक्त मन्तव्य भागवत को छोड़ कर सभी को स्वीकार है, अन्तर केवल कुछ नामों में है। जैसे तुण्डिकेर को शौंडिकेय और तालजंघ के स्थान में स्वयजात।

भागवत के मत से अर्जुन के सौ पुत्र हुये, जो प्राय सभी युद्ध में मारे गये, किन्तु पाँच शेष रहे। वे थे —जयध्वज, शूरसेन, वृषभ, मधु और ऊर्जित। जयध्वज का पुत्र तालजंघ हुआ, किन्तु उसके पुत्रों का और्वों (भार्गवों) ने संहार कर दिया। जयध्वज के भाई मधु का पुत्र वृष्णि हुआ। वृष्णि मधु के सौ पुत्रों में से ज्येष्ठ था। इसीलिये यह कुल नीचे लिखे तीनों नामों से पुकारा जाने लगा। अर्थात् यादव, माधव, और वार्ष्णेय।

हैहय यदुवंशी थे। उनके जो पाँच विभाग वायुपुराण में दिखाये गये हैं, वे भागवत में नहीं हैं। केवल यादव, माधव और वार्ष्णेय लिखकर छोड़ दिया गया है। परन्तु यह उपरोक्त तीनों नाम एक ही कुल के द्योतक हैं।

भागवत के अनुसार सहस्रजित का पुत्र हैहय—उसका पुत्र कार्तिकेय और इसी परंपरा में तालजंघ और उसका पुत्र वीतिहोत्र हुआ। फिर वीतिहोत्र का कुल चला कि नहीं या यह सब मर गये, कुछ नहीं लिखा है। हाँ, यह अवश्य लिखा है कि अर्जुन के पुत्रों में से मधु का वंश चला और सब माधव

कहे गये। मधु का पुत्र वृष्णि था। अतः वे ही वार्ष्णेय कहे गये।

उपरोक्त बातें बताती हैं कि वीतिहोत्र, भोज, अवन्ति, शौंडिकेय और स्वयंजात कुलों का आरंभ तत्काल ही नहीं हुआ था। उनकी कोई वंशावली पुराणकार नहीं देते और न हैहय से लेकर वीतिहोत्र तक कोई इस प्रकार के नामों का ही उल्लेख करते हैं जिससे अवन्ति, स्वयंजात और शौंडिकेय कुलों के चलाने वाले का नाम स्पष्ट हो। इससे समझ पड़ता है कि हैहय वंश की तत्कालीन प्रतिष्ठा और हैहय वंश के यदुवंश में उत्पन्न होने के कारण क्रोष्टुवंश में उत्पन्न भोज, मधु और वृष्णि भी सहस्रबाहु अर्जुन के वंशधर माने गये।

वीतिहोत्र, जो सगर से युद्ध में पराजित हुआ था, और पराजित होकर एक भार्गव ऋषि का शरणापन्न हुआ था। जहाँ सगर और उसकी सेना वीतिहोत्र को खोजती हुई जब पहुँची तो भार्गव ऋषि ने कह दिया कि मेरे आश्रम में वीतिहोत्र नाम का कोई क्षत्रिय नहीं है। एक वीतिहव्य है और वह भी ब्राह्मण है।*

वेदमंत्रकर्त्ता ऋषियों की कुल संख्या ६२ है। उपरोक्त वीतिहोत्र या वीतिहव्य उन ६२ ऋषियों में से हैं, जिनके वंशज गृत्समद और शौनक नामक ऋषि हुये।

भागवतकार ने अपने को रूढ़ियों का दास न बनाकर वंशों को पृथक पृथक दर्शाया है।

कहते हैं, हैहयों के आक्रमण सत्युग और त्रेतायुग की सन्धि के समय हुये थे।

सगर जो त्रेतायुग के आरंभ में हुआ था, उसकी मृत्यु के उपरान्त विदर्भ के भोजों ने फिर उत्तर की ओर पग बढ़ाया। यमुना

* श्री भगवद्दत्त शास्त्री कृत "वैदिक वाङमय का इतिहास" पृ० २४२ और मिश्रबन्धु कृत भा० का इतिहास द्वितीय सं०।

से ताप्ती तक का समूचा प्रदेश फिर उनके अधिकार में आ गया। विदर्भ के पौत्र चिदि ने चवल और शुक्तिमती ( केन ) के बीच समस्त प्रदेश को 'चेदि' नाम की संज्ञा दी। चेदि वंशज यदुवंशी, हैहय वंशी, भोज और तत्पश्चात् चेदिवंशज कहे जाने लगे। चेदियों ने विस्तार किया। कान्यकुब्ज मिट गया। पौरव भी पश्चिम की ओर खसके। पूर्वी आनव वंश में इस समय बलि राजा था। उसके बेटे—अंग, बंग, कलिंग, पुण्ड्र और सुह्म लोगों ने अपने नाम पर देश बसाये। विन्ध्यमेखला का पूर्वी छोर भेदकर कलिंग उड़ीसा तक फैल गया। इस समय के कुछ पश्चात् भरत दौष्यन्त हुआ।

अयोध्या के सूर्यवंश में सम्राट् भगीरथ इसके बाद हुआ। भगीरथ का पौत्र नाभाग और इसके पुत्र अम्बरीष के समय में सूर्यवंश की समृद्धि बिलकुल मन्द हो गई।

विदर्भ देश में भीम और निषध देश में नल इसके बाद हुये। चेदि देश में इस समय सुबाहु राजा था। नल के समय अयोध्या के वंश में ऋतुपर्ण था। इसकी आठवीं पीढ़ी के समय हस्तिनापुर और पांचाल देश में भारत वंश अपनी पूरी समृद्धि पर था। अयोध्या इस समय तक तो अवश्य दुर्बल था, किन्तु तत्काल बाद ही दिलीप के समय वह फिर उठा। लगभग इसी समय विदर्भ के भोजों में चक्रवर्ती सम्राट् मधु हुआ। जिसे पुराणकार कार्तवीर्यअर्जुन का पुत्र मानते हैं। इसी मधु के प्रभाव के कारण यदुवंशी माधव कहे गये।

चक्रवर्ती सम्राट् मधु ने यदुवंश के समस्त छोटे छोटे जनपदों को ( गुजरात से लेकर यमुना तक के समस्त प्रदेशों को ) संगठित कर एक वृहद् साम्राज्य स्थापित किया। समस्त यदुवंशी चाहे हैहय हों, चाहे भोज चाहे चेदि सभी माधव कहाने लगे।

मधुवंश के लोग बड़े शूरवीर, पराक्रमी और युद्ध प्रिय थे।

पीठ पर हर समय तुण्डी (तरकस) बँधी रहती। जहाँ चाहते आक्रमण कर बैठते, और जहाँ चाहते मस्त पड़े रहते। घोड़े की पीठ हो या भूमि, जंगल हो या नगर, उद्यान हो या मरुभूमि, सर्वत्र इनकी एक सी दशा रहती। अतएव तुण्डीधारी मधुवंशियों की एक शाखा तौंडीर्य या शौंडीर्य कही जाने लगी। यथा—

"यथा ह्येवं अशौण्डीरं क्षत्रियर्षभः।" अयो० २३।७

अद्य चारित्र शौंडीर्यं रत्नां प्राप्य विनिवर्तितम्।
अयो० ७३।२३

अनृशंसमधर्मिष्ठः तव शौंण्डीर्य मानिनः। आरण्य० ५३।८

उवाचात्महितं वाक्यं वृत्त शौंण्डीर्य गर्वितम्
सुन्दर कांड २२।१३

आगे चलकर इसी मधु कुल में राजा सत्व का पुत्र सात्वत हुआ। इसी सात्वत का पुत्र वृष्णि था। सत्व के पुत्र सात्वत और वृष्णि के पुत्र वार्ष्णेय कहे जाने लगे। वृष्णि का एक छोटा भाई अन्धक था। उसके वंशज अन्धक कहे जाने लगे।

इस प्रकार इस समय तक यदुवंश अथवा हैहयवंश की अनेक शाखा अनेक स्थानों में स्थापित हुईं। साथ ही इनकी शक्ति का अलग अलग विस्तार भी होता रहा।

उधर अयोध्या के वंश में दिलीप का पौत्र चक्रवर्ती रघु हुआ। विदर्भ के भोज कुलोत्पन्न राजा ने अपनी भगिनी भोज्या इन्दुमती का स्वयंवर रचा। अनेक देश के राजा आए। माहिष्मती नरेश महाराज प्रतीप भी उपस्थित थे। एक आवन्त्य (अवन्ति नरेश) भी उपस्थित था।

रघु का पौत्र दशरथ और दशरथ के पुत्र प्रसिद्ध राम थे। राम के समय में त्रेता का अन्त और द्वापर का प्रारम्भ माना जाता है। राम ने अपने शासन के दिनों में अयोध्याराज का खूब विस्तार किया। राम के भाई शत्रुघ्न ने लवण नामक एक यदुवंशी यादव

नरेश का प्रदेश उसे मार कर छीन लिया। उस प्रदेश में एक विस्तृत जंगल था। जिसका नाम लवण के पूर्वज सम्राट मधु के नाम पर मधुवन था। शत्रुघ्न ने उसे साफ कराकर एक बस्ती बसाई, जिसका नाम शत्रुघ्न के द्वितीय पुत्र शूरसेन के नाम पर शूरसेन देश रक्खा गया। राम और शत्रुघ्न की मृत्यु के उपरान्त भीम सात्वत ने अपने पूर्वजों के देश तत्कालीन शूरसेन को, सूर्यवंशियों को मारकर फिर अपने अधिकार में कर लिया।

जिन वृष्णि और अन्धक दो भाइयों की चर्चा ऊपर की जा चुकी है, उनमें से वृष्णि कुल में कृष्ण और अन्धक कुल में कंस पैदा हुए। इस समय तक इन यदुवंशियों के १८ कुल हो चुके थे।

इसी समय उत्तर पांचाल में राजा संजय उसका पुत्र च्यवन पिजवन और उसका पुत्र सुदास सोमदत्त नाम का प्रसिद्ध राजा हुआ। चन्द्रवंशी भरत दौष्यन्ति की छठीं पीढ़ी में राजा हस्ती उत्पन्न हुआ था। इसी के नाम पर इसकी राजधानी हस्तिनापुर प्रसिद्ध हुई। हस्ती के पुत्र अजमीढ़ के समय में इस वंश की दो शाखाएँ हो गईं। हस्तिनापुर वाली शाखा मुख्य वंशज की रही और दूसरी शाखा गंगा जमुना द्वाबे में स्थापित हुई। दूसरी वाली शाखा में एक राजा के पांच राजकुमार थे। जिन्हें हँसी में पांचाल कहा जाता था। धीरे धीरे इसी पांचाल नाम को उनके देश ने धारण किया। कालान्तर में पांचाल के भी दो भाग हो गये। इन्हीं पांचालों में द्रुपद हुआ। हस्ती के वंश में कौरव और उनके भाई पांडव हुये। यह सब कृष्ण के समकालीन थे।

इसी समय मगध का राजा जरासन्ध हुआ जरासन्ध ने दिग्विजय किया। पूरब ओर अंग, बंग और कलिंग तथा पुण्ड्र देश इसने जीते और साम्राज्य की स्थापना की और पश्चिम ओर कारुष प्रदेश के राजा वक्र को इसने पराजित किया, तत्पश्चात्

चेदिराज शिशुपाल को इसने अधीन किया और अपना मित्र बनाया। काशी, कोशल और विन्ध्याचल के समस्त पूर्वी भाग को इसने अपने वश में किया। चेदिराज शिशुपाल इसका प्रधान सेनापति नियत हुआ।

चेदि के पश्चिमोत्तर प्रदेश शूरसेन में कुकुर वंश का राज्य था। देवकी के पिता देवक का छोटा भाई उग्रसेन शूरसेन देश की गद्दी पर आसीन हुआ, परन्तु उसके पुत्र ने जो जरासन्ध का दामाद था, जरासन्ध के द्वारा उभाड़े जाने पर शूरसेन देश की गद्दी पर पिता को हटाकर अधिकार कर लिया। जनता ने कंस के इस कार्य को नापसन्द किया, किन्तु कंस जनता की आवाज और उसके विरोध को दबाता रहा। आये दिन कोई न कोई बड़ी दुर्घटना होती रहती।

शूरसेन देश में उस काल केवल कुकुर कुल के ही लोग नहीं रहते थे। उपरोक्त १८ कुलों में से अनेक कुलो के लोग बसते थे। विरोध ने धीरे धीरे विद्रोह का रूप धारण किया। कृष्ण के उत्पन्न होने के पूर्व ही उनके माता पिता जेलों में ठूस दिये गये। इनकी अपेक्षा अन्य विरोधी नेताओं को उसने मार डालने की अनेक योजनाएँ बनायीं।

कंस का राज्य एकतंत्र राज्यप्रणाली के आधार पर स्थापित हुआ था और उससे पूर्व राज्य शासन की प्रणाली गणतंत्र के आधार पर चल रही थी। जो यदुवंशियो में प्रायः सर्वत्र प्रचलित थी। इसलिये जनता में विरोध और राज्य के विरुद्ध विद्रोह स्वाभाविक था। धीरे धीरे कृष्ण ने नेतृत्व ग्रहण किया और अवसर आने पर कंस कृष्ण द्वारा मारा गया।

कंस के मारे जाने पर जरासन्ध जल भुन उठा। उसने कंस के प्रतिद्वन्दियों को मिटा देने की इच्छा से काश्मीर देश के राजा गोनन्द को लेकर शूरसेन देश पर भारी चढ़ाई की। यदुवंश के

अनेक कुलों ने मिल कर जरासन्ध का सामना किया। जरासन्ध थक कर वापस लौट गया। परन्तु वह हताश नहीं हुआ था। यह देख कर श्रीकृष्ण की सम्मति से राजधानी आनर्त देश उठा ले जाई गई।

कृष्ण महान् नीतिज्ञ और दूरदर्शी व्यक्ति थे, उन्होंने कालान्तर में जरासन्ध से भीम पाण्डव को भिड़ा दिया। महाबलवान् भीम ने जरासन्ध को मल्लयुद्ध में पछाड़ा और कृष्ण के समझाये हुये ढंग से उसको मार डाला। इसके पश्चात युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ हुआ।

युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय युधिष्ठिर को छोड़ कर शेष पाण्डव जिन देशों की ओर कुछ कर उगाहने और निमंत्रित करने गये। उनमें से निम्नलिखित यदुवंशीय राज्य थे —

दशार्ण (धमान=भूपाल), चेदि (बुंदेलखण्ड), विदर्भ (बरार), कुन्तिभोज (ग्वालियर=भेलसा), अवन्ती (उज्जैन) भोजकट (बरार के समीप कर्णाटक प्रदेश), माहिष्मती, त्रैपुर (जबलपुर), सौराष्ट्र (काठियावाड़) मालव (दक्षिणी पंजाब और उत्तरी राजपूताने के प्रदेश), आनर्त अथवा द्वारका के यदुवंशी श्रीकृष्ण को अगुआ बना कर नगर के बाहर कर लेकर स्वयं मिले।

इन उपरोक्त देशों के नामों में सौंडीर्य या शौंडीर्य नाम का उल्लेख नहीं आया, परन्तु युद्ध के पर्वों में शौंडीर्यों की चर्चा है। जिनमें से द्रोणपर्व १७।१९ और कर्णपर्व २।५१ में शौंडीर्य और शान्ति पर्व १३।४८, ६७।२५ उद्योग पर्व १६०।३१ गदापर्व ६१।५, ३४।१ में शौंडीर्यों का उल्लेख है। इस शौंडीर्य और उपनाम शौंडीर्य शब्द की उत्पत्ति 'शण्ड' धातु से है। जिसकी व्याख्या 'शुण्डति हिनस्ति इति शण्डः।' हिंसा करने में समर्थ पुरुष है।

गुरुकुल कांगड़ी के प्रसिद्ध आचार्य स्व० रामदेव एम० ए० ने अपने लिखित भारतवर्ष के इतिहास द्वितीय भाग के पृष्ठ ७४ से ७७ तक में महाभारत युद्ध में हिस्सा लेनेवाले जिन देशों की सूची दी है, उसमें मध्यदेश से चेदि, दशार्ण और शूरसेन, पश्चिम से यदुवशियों की सेना दो दलों में आई थी। एक दल तो आनर्तदेश की सेना थी जो कृतवर्मा के नेतृत्व में कौरवों के साथ था—दूसरा दल युयुधान और सात्यकि के नेतृत्व में पांडवों के साथ था। मध्यभारत से अवन्तिराज ( जयसेन के दो पुत्र ) विन्दु अनुविन्दु ( दोनों राजा थे )। माहिष्मती का राजा बल ( भारतीय इतिहास की रूपरेखा में नील लिखा हुआ है, जिसकी नायकता में विदर्भ और निषध के राष्ट्र कौरवों की ओर थे। नील की सेना मे अनेक आन्ध्र और द्रविड़ सैनिक भी थे ) पश्चिम से मालव, दक्षिण से कुकुर और अन्धक ।

इसकी अपेक्षा अन्य बहुत से छोटे छोटे राज्य भी सम्मिलित हुये थे। जिनमें शौंडिकों का भी उल्लेख पाया जाता है। हो सकता है, यह शौंडिक मधुकुल का पर्यायवाची हो। क्योंकि यहाँ अन्य अनेक कुलों का उल्लेख तो है, पर मधुकुल का नहीं है।

प्रसिद्ध चतुर्वेद भाष्यकार श्री पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार ने अपने लिखे जायसवाल जाति का इतिहास पृष्ठ ३२२ पर लिखा है:—
" शौंडिक कुल का चलाने वाला कोई पुरुष 'शुण्डक' या शौंडिक नहीं हुआ। फिर यह कुल कहाँ से चला, इसका विचार करना बड़ा आवश्यक है।

" वायुपुराण ने ( हैहय वंश के ) पाँच कुलों में माधव कुल का उल्लेख नहीं किया और भागवतकार ने शौंडिक कुल का उल्लेख नहीं किया। इससे यही समझ पड़ता है कि माधव कुल को ही किन्हीं कारणों से शौंडिक कुल कहा गया है। "

"क्षत्रिय रणप्रिय और मदप्रिय होते हैं। यादव लोगों ने

अपना व्यसन मद्यपान की दिशा में खूब बढ़ाया था। वे उसे तैयार भी करते थे, जिसका निर्माण कालान्तर में शुण्डा यन्त्र से होने लगा, इस आविष्कार के कारण हैहय कुल में से एक कुल का नाम शौंडिक कुल पड़ गया है। ( नारायणचन्द्र शाहा )

आगे जयदेव शर्मा जी विद्यालंकार जायसवाल जाति का इतिहास पृ० १२२ पर लिखते हैं —"मधु और शुण्डा शब्द पर्याय हैं। दोनोमें अपत्यार्थ प्रत्यय लगे हुए हैं, इस कारण चाहेमाधव कहिये या शौंडिकेय कहिये, समान बात हैं।"

इस प्रकार हैहय कुल या माधव कुल के वे पाच कुल, जिनका उल्लेख २७४।१० में हुआ है। निम्नलिखित यदुकुल के दाशार्ह, वृष्णि, अन्धक, भोज, सात्वत, मधु, अर्बुद, मालव, माथुर, शूरसेन, विसर्जन, कुक्कुर, कुन्ति, अवन्ति, वीतिहोत्र, स्वयभोज ( स्वयजात ) महाभोज ( आभीर ) और चेदि हुआ था।

दिग्विजय के बाद राजसूय यज्ञ उत्सव हुआ। उसमें कई राजाओं का प्रतिनिधि बन शिशुपाल बोला—"हम युधिष्ठिर के भय से, अथवा लोभ या सान्त्वना के कारण कर नहीं देते। हम तो धर्म में प्रवृत्त देख कर ही कर देते हैं।"

यादवों में प्रमुख श्रीकृष्ण थे। जरासध के वध में उनकी नीति निपुणता ही प्रमुख कारण हुई थी। फिर युधिष्ठिर तो रक्तपात के भय से साम्राज्य का विचार ही छोड चुके थे। श्रीकृष्ण ही ऐसे थे, जिन्होंने प्रोत्साहन देकर उनसे यह सब कार्य कराया था। श्रीकृष्ण ने साम्राज्य अपने कुल के लिये नहीं चाहा। चाहते भी कैसे ? यदुवशियों में परस्पर मतैक्य न था। उनमें परस्पर गहरे से गहरा मतभेद हो जाता था। श्रीकृष्ण उससे बड़े दुखी रहते थे। उनके देश में शासन सचालन की सस्था पालियामैंट या कौंसिल में खूब विवाद होते और विवाद के समय श्रीकृष्ण को

लक्ष्य कर के अनेक कटाक्ष किये जाते।* इसलिये कृष्ण ने पाण्डवों को भारत का सम्राट बनाने में ही अपनी शक्ति का उपयोग किया। यादवों को जरासन्ध के साम्राज्य से निकाल कर पांडवों के साम्राज्य का अंग बना दिया।

पार्लियामेंट में स्वतंत्रता पूर्वक अपने वृद्ध जनों के विरुद्ध बोलने के अभ्यास ने धीरे धीरे यदुवंशियों को उच्छृङ्खल बना दिया। फिर महाभारत युद्ध में यदुवंश के लोग प्रतिद्वन्द्वी बन कर एक दूसरे के सम्मुख निर्संकोच लड़े थे, इसलिये इनमें उद्दण्डता आ गई। वृद्ध पुरुषों और ऋषियों तक से वे निर्लज्जता-पूर्ण मज़ाक करते। मद्यपान कर परस्पर खूब लड़ते, वृद्धों, पितरों और गुरुओं का अपमान करते। इस तरह ज्यों ज्यो समय बीता त्यों त्यों उनकी उद्दण्डता बढ़ती ही गई।

महाभारत मौसलपर्व १,२८-३१ में लिखा है कि सौभनगर के राजा शाल्व की चढ़ाई के समय यादवों में मद्यपान का विस्तार देख आहुक, बभ्रु, कृष्ण और बलराम—इन सबके नामों से राष्ट्रभर में विज्ञप्ति (ढिंढोरा पिटाया गया) कराई गई कि मद्य निर्माण राजाज्ञा द्वारा वर्जित है। आज के पीछे जो मद्यपान करेगा उसे बान्धवों सहित प्राणदण्ड दिया जायगा। इस विज्ञप्ति से कुछ समय तक मद्यपान का कार्य रुका रहा, परन्तु लत जो पड़ गई थी—वह कैसे छूटती। चुपचाप ही बनाना और अकेले ही पान कर लेना, अभ्यास फिर बढ़ता गया। एक दिन प्रभास नगर में—जो द्वारका का तीर्थ था, सभी यादव एकत्र हुए। रंग-रेलियाँ शुरू हो गईं। नर्तकियों का नृत्य और साथ में शराब का दौर चल रहा था। सात्यकि कृतवर्मा पर और कृतवर्मा सात्यकि पर वाक्बाण छोड़ रहे थे। कृष्ण का पुत्र प्रद्युम्न ने भी वाक्बाण

* शान्तिपर्व ८१।१—२६

में योग दिया। सात्यकि नशे में मस्त था। कृतवर्मा ने उसकी कवता का उत्तर दिया ही था कि सात्यकि ने झट कृपाण खींच लिया और कृतवर्मा का सिर काट कर रख दिया। महाभारत युद्ध के समय की द्वेषाग्नि ३६ वर्ष बाद भभक उठी। अन्धक और भोज सात्यकि के विरुद्ध हो गये। प्रद्युम्न ने सात्यकि का पक्ष लिया। बात की बात में कृपाण चमक उठा। लोग एक दूसरे पर टूट पड़े। बात बढ़ती गई और उसने भयानक युद्ध का रूप धारण किया। इस तरह यदुवंश का विनाश होगया। परस्पर लड़कर राज्य छिन्न भिन्न हो गये। श्रीकृष्ण ने वानप्रस्थ ले लिया। वे ज्ञान ध्यान में मस्त जंगलों में विचरने लगे। इसी अवस्था में एक दिन किसी दूर खड़े शिकारी ने तीर से घायल कर उनके प्राणों का अन्त कर दिया। अर्जुन ने उनका अन्तिम संस्कार किया।* ठीक श्रीकृष्ण की मृत्यु के समय से द्वापर का अन्त समझा जाने लगा और कलियुग का आरम्भ हुआ।

यादवों के गृहयुद्ध के फल स्वरूप इनकी संगठित शक्ति का अन्त हो गया। परन्तु इनके देश में प्रचलित शासन प्रणाली —जिसका स्वरूप आधुनिक प्रजातंत्र के समान था—का नहीं। वह तो महात्मा बुद्ध के उत्पन्न होने के समय तक भारत देश में बराबर चलता रहा और इस प्रजातन्त्र प्रणाली के कारण ही कृष्ण के बाद इस वंश या इनके जाति भाइयों के वंशजों की क्रमबद्ध वंशावली नहीं उपलब्ध होती। क्योंकि उनमें कोई राजा न होता था। श्रीमान् डा० काशीप्रसाद जायसवाल ने अपने हिन्दू राज्यतंत्र में ई० ६०० तक बराबर इस प्रणाली का चलते रहना माना है। वे लिखते हैं—"वैदिक, संस्कृत, प्राकृत और अन्य ग्रंथों में तथा इस देश के शिलालेखों तथा सिक्कों में रक्षित लेखों से हमें इस विषय की बहुत सी बातें ज्ञात होती हैं।"

---

* चमूपति एम० ए० कृत योगेश्वर कृष्ण पृष्ठ ३३३ ३३४

वैदिक युगमें राष्ट्रीय जीवन के सब कार्य सार्वजनिक समूहों और संस्थाओं आदि के द्वारा हुआ करते थे। इसको समिति कहते थे। सब का एक जगह मिलना या एकत्र होना यही समिति का प्रयोजन था। जो जनसाधारण अथवा विशः (गाँव) की राष्ट्रीय सभा थी। हैहय क्षत्रियों का एक कुल बनने के पूर्व शार्यात क्षत्रिय ग्राम (विशः) समेत घूमा करता था।

राष्ट्रीय सभा, जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है, राजा (सभापति) का चुनाव का कार्य करती थी। वैदिक युग की यह प्रजातंत्रीय प्रणाली नष्ट हो कर एक राष्ट्र में बदल गई थी, किन्तु कार्तवीर्य अर्जुन के बाद धीरे धीरे उसकी फिर स्थापना हुई और महाभारत युद्ध के बाद तो उसका विस्तार तेजी से हुआ था।

चन्द्रगुप्त के काल में आया हुआ चीनी यात्री मेगास्थनीज ने परम्परा से चली आई दन्त कथाओं के आधार पर लिखा है—"राजा के द्वारा शासन करने की प्रथा तोड़ दी गई थी और भिन्न भिन्न स्थानों में प्रजातंत्र शासन की स्थापना हो गई थी।"

श्री डा० काशीप्रसाद जायसावल अपने हिन्दू राज्यतंत्र प्रथम भाग पृष्ठ ७८ पर लिखते हैं:—"पाणिनि ने जिन अंधक-वृष्णियों का उल्लेख किया है, उन पर अलग विचार होना चाहिये। पुराणों के अनुसार ये वही हैं जो सात्वत हैं। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार सात्वतों में भौज्य शासन प्रणाली प्रचलित थी और उनके शासक भोज कहलाते थे। महाभारत में अन्धकों के शासक भोज कहे गए हैं; और स्वयं यादवों का एक उपवर्ग या विभाग भी भोज कहलाता था। वृष्णियों की शासन-प्रणाली में कोई राजा नहीं होता था, इस बात का पता हमें इस दन्तकथा से भी लगता है कि उन्हें इस बात का शाप मिला था कि उनमें के लोग कभी राजा के रूप में अभिषिक्त न होंगे। महाभारत के सभापर्व

(३७,५) में कहा गया है कि दशाण वृष्णि लोग राजा रहित थे। इनका सघ था, इस बात का प्रमाण कौटिल्य से भी मिलता है जिसमें इस बात का उल्लेख है कि 'प्राचीन काल" में द्वैपायन को रुष्ट करने के कारण वृष्णि सघ पर आपत्ति आई थी। महाभारत में अधक वृष्णि सङ्घ के सम्बध में एक "प्राचीन" कथा भी दी गई है। उनमे कोई प्रजातत्री राजा नहीं था। इस बात का प्रमाण उनके सिक्कों से भी मिलता है। जिस पर उनके गण का नाम अकित है-"वृष्णि राजन्य गणस्य"। अधक वृष्णियों में दो राजन्य थे। पाणिनि ने उनका उल्लेख करने का एक विशेष नियम दिया है। इस प्रकार के द्वैध शासकों के कई वर्गो के नाम साहित्य में रक्षित हैं। शिनि और वासुदेव, श्वाफल्क और चैत्रक आदि राजयों के वर्गो के नाम काशिका मे आए हैं। अक्रूर के वग तथा वासुदेव के वर्ग का उल्लेख कात्यायन में है।"

इस प्रकार उस काल हजारों वर्ष तक यह गणराज्य, द्वैराज्य, अराजक और भौज्य प्रणालियाँ चलती रहीं। जिनमें शाक्य, कोलिय, लिच्छवि, विदेह, मल्ल, मोरिय, अल्लकप्प के बुली, अम्बष्ठ, यौधेय, वृजिक, कुकुर और मद्रक भी उल्लेखनीय हैं। क्षुद्रकों और मालवों का, जो इन आयुधजीवो सघों या प्रजातत्रों में सर्वप्रमुख थे, कौटिल्य ने कोई उल्लेख नहीं किया है। हो सकता है वे लोग उस समय साम्राज्यों की छाया में आ गए हों। काम्भोज, सुराष्ट्र, खतिय (क्षत्रिय) श्रेणी (सेनी) आदि सभी राज्य गण सघों में परिचालित थे।

डा० काशीप्रसाद जी हि० रा० सत्र पृष्ठ ६३ पर लिखते हैं, "अर्थशास्त्र में आयुधजीवो सघों में सबसे पहले काम्भोज का नाम आया है। वे लोग पूर्वी अफगानिस्तान में थे। अशोक के शिलालेखों में उनका उल्लेख गान्धारों के बाद आया है। यास्क

के अनुसार उनकी मातृभाषा संस्कृत थी। परन्तु उसमें कुछ तत्व ऐसे भी थे जो, जान पड़ता है कि उन्होंने अपने ईरानी पड़ोसियों से ग्रहण किये थे। पाणिनि उनसे भी परिचित था, क्योंकि उसने उनके राजा का बोधक रूप बनाने के लिये सूत्र दिया है।......कांबोजों में जो राजा होता था वह एकराज होता था।......भोज लोग जैसा कि हम आगे चल कर बतलावेंगे, ऐसे वर्ग के थे जिनमें एक राजवाली शासन प्रणाली नहीं थी। कांभोज का शब्दार्थ है निकृष्ट भोज।

"सुराष्ट्र लोग (सुराष्ट्र का शब्दार्थ है अच्छा राष्ट्र) काठियावाड़ में थे। वे मौर्य साम्राज्य के उपरान्त भी बचे रह गये थे।"

उपरोक्त उद्धरण उस समय के भारत की अवस्था पर प्रकाश डालते है, जब यूनानी सिकंदर ने भारत पर चढ़ाई की थी। उस समय गांधार लोग अपनी पुरानी राजधानी तक्षशिला से हटकर और आगे अपनी राजधानी स्थापित कर चुके थे। सुप्रसिद्ध राजा बड़े पुरु का भतीजा युवक पुरु उनका शासक था।

उस समय के पश्चात् अशोक के समय में और उसके प्राज्ञापित प्रधान शिलालेखों के तेरहवें प्रज्ञापन में गांधारों के स्थान में नाभक या नाभपंक्ति दिए गए हैं।......अशोक के शिलालेखों में से एक में वे नाभतिन भी कहे गये हैं जिसका अर्थ नाभ त्रय अथवा तीन नाभ भी हो सकता है।...पाणिनि ४.१. ११२ के गणपाठ में हमें यह शब्द नाभक रूप में मिला है।...नाभक संभवत: एक जातीय उपाधि थी जो नाभ जाति से सम्बंध रखती थी अथवा उसकी सूचक थी।*

उपरोक्त नाभ लोग श्रीकृष्ण के वंशज थे, जैसा कि टाडकृत राजस्थान भाग २ पृष्ठ ४६१ पर लिखा है कि—"श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के दो पुत्र थे। १ अनिरुद्ध और २– वज्र। वज्र के

* हिन्दू राज्यतंत्र प्र० भा०

नाभ और चेर नामक दो पुत्र थे। इसी नाभ के उपरोक्त नाभ पंक्ति वाले राजा लोग वंशधर थे। इसी वंश में कर्नल टाड के अनुसार प्रतिबाहु उसका पुत्र बाहुबल उसका पुत्र सुबाहु उसका रज और उसका पुत्र गज हुआ। जिसे गजसेन या गजपाल भी कहते थे। इस तरह हम देखते हैं कि द्वारका में परस्पर लड़कर नष्ट भ्रष्ट होकर भारत के सुदूरवर्ती पश्चिमोत्तर प्रदेश के भी पश्चिम काम्बोज तक यह यदुवंश की शाखा उपशाखाओं ने विस्तार किया था। जिनकी संख्या इस समय तक १८ से बढ़कर ५६ हो गई थी। चेदि, दशार्ण, अवन्ति और वीतिहोत्र का क्या हुआ, इसको जानने के लिये हमें एक बार पिछले इतिहास की ओर जाना होगा।

महाभारत के समय अवध के सूर्यवंश में राजा बृहद्बल था। महात्मा गौतम बुद्ध के समय प्रसेनजित् राजा था। यह बिन्दुसार का समकालीन और बृहद्बल के वंश में उससे २८वाँ राजा था। मगध राजवंश में जरासन्ध के बाद २३वाँ राजा रिपुञ्जय था। जो पुत्र विहीन था। उसके केवल एक पुत्री थी। उसके प्रधानामात्य या सेनापति पुलक ने उसे मार कर अपने लड़के प्रद्योत को मगध के सिंहासन पर बैठाया। इस वंश का नाम इसी प्रद्योत नाम पर प्रतिष्ठित हुआ।

आचार्य रामदेव भारतवर्ष का इतिहास द्वितीय भाग पृष्ठ ६१ पर लिखते हैं— "पुराणों के अनुसार प्रतीत होता है कि राजा रिपुंजय का शासनकाल बहुत घटनामय था। इस काल की सबसे मुख्य घटना यह है कि अवन्ति के प्राचीन राजवंश का अन्त कर दिया गया। महाभारत काल में अवन्ति बड़ा शक्तिशाली राज्य था। यहाँ द्वैराज्य शासन पद्धति प्रचलित थी। वहाँ का राजा दो अक्षौहिणी सेना लेकर महाभारत युद्ध में सम्मिलित हुआ था। इस शक्तिशाली राज्य का पिछले समय

का इतिहास पूरी तरह अन्धकारमय है। ऐसा प्रतीत होता है कि महाभारत युद्ध के बाद अवन्ति देश बहुत निर्बल हो गया। । पुराणों में इसके राजवंश का उल्लेख नहीं मिलता। ...... यह राज्य मगध के साम्राज्य का ग्रास बन गया। इसी तरह वीतिहोत्र वश का भी अन्त किया गया। पुराणों के अनुसार कलियुग के आरम्भ से वीतिहोत्र वंश के २० राजाओं ने माहिष्मती पर शासन किया था। और अवन्ति में २८, शूरसेन में २३, इस तरह भगवान बुद्ध से लगभग ३०० वर्ष पहले ही मगध के बार्हद्रथ वंश का अन्त हुआ और इसी समय वीतिहोत्र, अवन्ति भी समाप्त हुए। मगध का नवीन राजा प्रद्योत चण्ड अधिपति हुआ।

श्री भगवद्दत्त जी शास्त्री ने स्वलिखित भारतवर्ष का इतिहास पृष्ठ २४० पर अवन्ति के राजाओं का जो वर्णन किया है उसमें वीतिहोत्रवंश के आदित्यसेन, विक्रमसेन, पुण्यसेन, धर्मध्वज वीरदेव, कर्मसेन और उसके पुत्र सुषेण के नाम दिये हैं। इसी सुषेण के समय में चण्ड प्रद्योत हुआ। यह मगधराज रिपुंजय के प्रधानामात्य ( मंत्री ) पुलक का पुत्र था। पुलक ने रिपुंजय को मार कर मगध पर अधिकार किया था। और इसी पुलक ने अवन्ति और माहिष्मती के राज्य का अन्त कर पुत्र को अवन्ति ( सम्मिलित ) की गद्दी पर महासेन के नाम से बैठा कर रिपुंजय की कन्या से अपने पुत्र का विवाह करा मगध साम्राज्य को अपने वंशजों के अधिकार में कर लिया था। आगे इसके वंशजो के केवल चार राजा राज्य करने पाये। अन्तिम राजा नन्दिवर्धन * को मार कर शिशुनाग नामक इसके महासामन्त ने मगध राज्य पर अधिकार कर लिया। इसी शिशुनाग वंश का पाँचवा राजा बिम्बिसार महात्मा बुद्ध का समकालीन था।

* यजुर्वेद के अन्तिम अध्याय इसी समय लिखे गये।

बिम्बिसार का पुत्र अजातशत्रु था। इस अजातशत्रु का पुत्र उदायी और पौत्र दूसरा शिशुनाग था। इसका पुत्र नन्दिवर्धन और पौत्र महानन्दी था। महानन्दी के दो बेटों का अभिभावक महापद्मनन्द था। इसने महानन्दी के बेटों को मार कर मगध पर अधिकार कर लिया इसका पुत्र धननन्द था। जिसे मार कर चाणक्य की सहायता से चन्द्रगुप्त मौर्य राजा बना था।

यह बात पिछले पन्नों में लिखी जा चुकी है कि श्रीकृष्ण मधुकुल में उत्पन्न हुये थे, और मधुकुल यदुकुल अथवा हैहयकुल का एक अंग था। मधुकुल पर्याय में रामायण काल और महाभारत काल में शौंडीर्य भी कहा जाता था। आनर्त के यादवों के गृहयुद्ध के समय इनमें मद्य के निर्माण और मद्यपान का व्यसन बहुत बढ़ा हुआ था। राज्यहीन होने पर मद्य व्यसन से पूर्ण शौंडोर्यों ने मद्यनिर्माण का व्यसन अपना लिया और धीरे धीरे इसे अपने जीविका का साधन बनाया। जनसमाज ने इन्हें शौंडीर्य नाम की अपेक्षा ठक् प्रत्यय लगा कर शौंडिक की उपाधि दे दी। परन्तु गणरत्न महोदधि पृष्ठ ७६।१० का—

"शौंडायन मार्जन कर्म शौंडा, व्याडायना माड्य विहीन वाच। शौंड व्याडो निपुण चपलौ पण्डितात प्रवीण॥"

अर्थात् मार्जन कर्म में चतुर को शौंडायन और दुष्टनारहित वाणी बोलने वाले व्याडायन कहाते हैं। इसी प्रकार निपुण और चतुर को शौंड और चपल को व्याड कहते हैं। अत "शौंड" प्रवीण है, पंडित है। महर्षि पाणिनि ने भी सप्तमी शौंडे में निपुण और चतुर अर्थ स्वीकार किया है।

यह भाव शौंडिकों के प्रति बस काल भी स्थिर रहा। भगवान् बुद्ध के बाद और मौर्य साम्राज्य के उत्थान के समय सभी छोटे छोटे गणराज्यों का अन्त हो गया। अशोक के समय में चोल,

केरल और मुरल को छोड़ कर भारतवर्ष के सभी राज्य समाप्त हो गये।

मध्यदेश का शासन पटना, उत्तरापथ का तक्षशिला, पश्चिमी चक्र का शासन उज्जैन और दक्षिणापथ का शासन सुवर्ण-गिरि से होता था। कलिंग पूर्वी प्रान्त में पड़ता था, इसकी राज-धानी तोसली थी। राजधानियों में महाराजा की ओर से राजकुमार, महामात्य (सचिव) या राजुक शासन करते थे।

ईरान के उत्तरी पहाड़ी हिस्से को आज कल खुरासान कहते हैं। वहाँ पार्थव नाम की एक ईरानी जाति रहती थी। पार्थव जाति के मुखिया अरसक ने ईरान को स्वतन्त्र कर अपने वंश का राज्य स्थापित किया। पार्थव प्रदेश के उत्तर पूरब वल्हीक या बलख और सुग्द प्रदेश थे। सुग्द में शक लोग और बलख में यूनानी लोग रहते थे। इनका भारतवर्ष से घनिष्ट सम्बन्ध था। यूनानी शासक सेलेउकी वंश के पश्चिम एशिया में स्थित साम्राज्य से स्वतन्त्र हो बैठा। उस समय काबुल दून में मौर्य राज्य का प्रतिनिधि सुभागसेन राज्य करता था। उसके मरने पर बलख के यूनानियों ने उसके साथ हरउअती और गदरोसिया राज्यों को जीत लिया। फिर उसने पंजाब और सिन्ध पर चढ़ाई की। इस समय मौर्य वंश का अन्तिम राजा बृहद्रथ मगध की गद्दी पर था। बलख और पार्थव राज्य के उसके साम्राज्य से निकल जाने पर दक्षिण में सिमुक नामक एक ब्राह्मण ने अपना राज्य स्थापित किया। उसके वंश का नाम सातवाहन पड़ा। जो आरम्भ में महाराष्ट्र में स्थापित होकर आन्ध्र प्रदेश तक फैल गया। इस तरह मगध साम्राज्य से महाराष्ट्र और काबुल के यह देश अलग हुये परन्तु कलिंग जो मगध साम्राज्य में सबसे पीछे सम्मिलित हुआ था, सम्भवतः वैसे ही वह इन दोनों देशों के अलग होने के पूर्व ही अलग हो चुका था। वहाँ

का स्वतंत्र शासक खारवेल ज्यों ज्यों मगध साम्राज्य मिटा सशक्त होता गया और आगे चलकर उसने सम्राट् की उपाधि धारण की। वह 'महामेघ' वंश का था और अपने को चेदिवंशज भी कहता था।

मौर्य राज्य की निष्क्रियता से ऊब कर प्रजा और सेना बिगड उठी। सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने समूची सेना के सामने राजा को मार कर शासन अपने हाथ में लिया। उसने समूचे मध्यदेश पर अधिकार करके यूनानियों से भी लडाइयाँ लड़ीं। उसका बेटा अग्निमित्र और पौत्र वसुमित्र था। वसुमित्र को एक घोड़ा देकर उसने समस्त भारत देश में घूमने का आदेश दिया और उसके बाद उसने अश्वमेघ यज्ञ किया। महर्षि पतञ्जलि उसके यज्ञ के पुरोहित थे।

मगध मध्यदेश में साम्राज्य का सबसे पुराना अंश था। इसलिये उसकी मर्यादा कुछ क्षण तक बनी रही। किन्तु वह मौर्य युग की भाँति पूर्व, दक्षिण और उत्तर के स्वतंत्र और समर्थ राज्यों को कभी अधीन न कर सका। वे सब उसी की तरह शक्तिशाली हो गये थे। उनमें भी उसी की तरह साम्राज्य स्थापित करने की आकांक्षा थी। इसलिये इन चारों के बीच परस्पर कशमकश और चढा ऊपरी लगातार लगी रही। पश्चिम खण्ड या उज्जैन की ओर जहाँ पुष्यमित्र का पुत्र अग्निमित्र प्रान्तपति के रूप में स्थित था—सातवाहन, खारवेल और पार्थव राज्य के शासक दिमित की आँख गड़ी हुई थी। पुष्यमित्र को इन सब से सदैव सावधान रहना पड़ता था। आये दिन होनेवाले हमलों से देश को सुरक्षित रखने का पुष्यमित्र निरन्तर प्रयास करता रहा। इस प्रकार स्यालकोट से लेकर बंगाल के समुद्र तट तक, दक्षिण में नर्मदा नदी और दक्षिणपूर्व बघेलखंड तक समूचे उत्तर

भारत में शुंगों का एकछत्र साम्राज्य स्थापित करने में वह सफल हुआ।

उसके समय में अवन्ति से दक्षिण विदर्भ का राज्य पुनः स्थापित हो गया था, और वहाँ का शासक यज्ञसेन नाम का एक व्यक्ति था, जो निश्चय ही यादववंश का और त्रैकूटकों का पूर्वज था। जो कि राजगद्दी पर हाल में बैठने के कारण प्रकृतियों में अपनी जड़ न जमा पाया था। सम्भवतः यह यज्ञसेन मौर्यों की ओर से बरार प्रान्त का प्रान्तपति था और पुष्यमित्र के हाथ में मौर्य शासन के चले जाने के पश्चात् स्वतंत्र हो गया था। यज्ञसेन का साला मौर्यों का मंत्री था। अतएव अग्निमित्र ने विदर्भ पर चढ़ाई की और युद्ध में यज्ञसेन को पराजित किया। और उसे वर्धा नदी तक के प्रदेश को शुङ्ग साम्राज्य के अधीन कर देने के लिये विवश किया।

यज्ञ के लिये पुष्यमित्र ने अपने पौत्र वसुमित्र की देख रेख में जो घोडा छोड़ा, उसे सिन्ध के किनारे यवनों ने पकड़ने की चेष्टा की और घोर युद्ध के बाद उन यवनों का पराभव हुआ।

चेदिवंश की उत्पत्ति हैहय कुल के भोज कुल में हुई थी और इस बात को हम बहुत विस्तृत रूप में पिछले पन्नों में लिख चुके हैं। हैहय राजा ऐल पुरुरवा का वंशधर था। कलिंग का खारवेल इसी ऐल चेदिवंश में उत्पन्न हुआ था। उसकी तत्कालीन वंशगत उपाधि 'महामेघ'* थी। उड़ीसा में ऐसी अनुश्रुति है कि खारवेल के पूर्वज दक्षिण कोशल से उस ओर गये थे। चेदि राज्य जो पहले बुन्देलखंड तक सीमित था और बाद में उसका विस्तार दक्षिण में नर्मदा के उद्गम स्थान तक फैल गया था। दक्षिण कोशल की दूरी वहाँ से अधिक नहीं है, अतएव चेदिवंशजों का

---

* देखो महामहोपाध्याय डा० काशी प्रसाद जी जायसवाल लिखित लेख। ना० प्र० प० भाग १० पृ० ५०२।

इसलिए कोशल होते हुए कलिंग पहुँच जाना एक बहुत साधारण सी बात है।

खारवेल जैन था। कहते हैं, उड़ीसा का सारा राष्ट्र (३५ लाख जन संख्या) उस समय मुख्यतः जैन ही थी। मालूम होता है खारवेल बहुत छोटी आयु में पितृ विहीन हो गया था। अतएव नौ वर्ष तक युवराजपद पर अभिषिक्त रहने के बाद वह चौबीस वर्ष की आयु में महाराज के पद पर अभिषिक्त हुआ। इस महाभिषेक के दूसरे ही वर्ष उसने सातवाहन शातकर्णि की परवाह न करके पश्चिम देश को एक सेना भेजी। कृष्णा नदी पार पहुँच कर उस सेना ने मूषिक नगर पर अधिकार कर लिया।

चौथे वर्ष उसने महाराष्ट्र के भोजों पर चढ़ाई की और उन्हें अपने अधीन किया। महाराष्ट्र के भोज इस समय सातवाहनों के अधीन थे अतएव महाराष्ट्र के भोजों को विजय करना सातवाहन साम्राज्य के एक अंग को विजय करना था। कहते हैं खारवेल के यह विजय उसकी अन्य विजयों का आरम्भ था।

छठे वर्ष उसका राजसूय अभिषेक हुआ। उसने पौर जानपदों को अनेक वैध रियायतें दीं। ठीक इसके बाद खारवेल के अभिषेक के आठवें वर्ष दिमित ने भारत पर चढ़ाई की। उसने पंजाब, मथुरा, कान्यकुब्ज आदि देशों को विजय कर साकेत (अयोध्या) को घेर कर मगध को घेरने की इच्छा से आगे बढ़ा, यह देख खारवेल अपनी सेना ले चल पड़ा और दिमित के पैर उखाड़ दिये। उसने यवनों को मध्यदेश से पूरी तरह खदेड़ दिया।

नवें वर्ष उसने कलिंग नगरी में महाविजयप्रसाद का निर्माण कराया, फिर बारहवें वर्ष उसने उत्तरापथ (पंजाब) पर चढ़ाई की। पुष्यमित्र ने भी इसी वर्ष सिंधु के दाहिने किनारे पर यवनों को हराया। और साकल तक अपना अधिकार स्थापित किया। यह समय ईसा से २०० सौ पूर्व माना गया है।

इन चढ़ाइयों और दिमित को मध्य देश से निकाल बाहर करने के बाद सम्राट् खारवेल अपने समय के सब राजाओं में प्रमुख माना जाने लगा। यद्यपि अभी तक उसने अपने देश कलिंग के पश्चिमी पड़ोसी मूषिक राज्य और महाराष्ट्र पर तथा उत्तरी पड़ोसी राज्य मगध पर ही चढ़ाइयाँ की थीं। अब उसने उत्तर और दक्खिन दूर दूर तक दिग्विजय करना आरम्भ किया।

अभिषेक के दसवें वर्ष उसने 'दण्ड सन्धि' और 'साम' हाथ मेंलेकर मूर्ति का जय करने को प्रस्थान किया। उसने जिन पर चढ़ाई की उनके मणि रत्न प्राप्त किये। वह मगध के और आगे और फिर उत्तर पश्चिम की ओर बढ़ता गया।

कलिंग के तट के साथ साथ दक्षिण बढ़ने पर 'आव' नामका एक छोटा सा राष्ट्र था। जिसकी राजधानी पिथुण्ड थी। जो दूसरी शताब्दी ई० के रोमन भूगोल लेखक प्तोलमाय के के समय तक तामिल देश का द्वार मानी जाती थी। खारवेल समय जो तामिल-देश-सङ्घात ११२ वर्ष पुराना था, वह निश्चय से चन्द्रगुप्त या बिन्दुसार मौर्य का मुकाबला करने को पहले पहल खड़ा हुआ होगा; तामिल राष्ट्र मौर्य साम्राज्य के अधीन होने से कैसे बचे रहे, इस पर भी इस बात से प्रकाश पड़ता है। तामिल देश की राजधानी इस युग में उरैपुर (आधुनिक त्रिचनापल्ली) थी। उसके अधीन उत्तरी चोल देश की उपराजधानी सुप्रसिद्ध कांची थी। उसका नाम हम पहले-पहल महाभाष्य में पाते हैं।

इसके बाद अगले वर्ष खारवेल की शक्ति भारत के अन्तिम छोरों तक पहुंच गई। बारहवें वर्ष उत्तरापथ के राजाओं को उसने त्रस्त किया। मगधों को भयभीत करते हुए अपने हाथियों को सुगांगेय* तक पहुँचाया। मगध नरेश बृहस्पतिमित्र = पुष्यमित्र

* मुद्रा राक्षस में मौर्यों के महल का नाम सुगांग है।

को पैरों गिरवाया। कलिंग से जिन की उन मूर्तियों को विजय के रूप में ले जानेवाले नन्द राजा नन्दिवर्धन का, खारवेल ने तीन सौ वर्ष पीछे मगध से बदला चुकाया। प्राचीन काल में भारतीय जन पदों में अपने जनपदों के मान अपमान का भाव कैसा उग्र था, खारवेल का यह कार्य उसका जीवित प्रमाण है।

खारवेल ने भारत के अनेक देशों को विजय किया था, भारत के उन विजित देशों पर उसकी पताकाएँ निर्बाध गति से फहरा कर उसके वैभव को दिन दूनी रात चौगुनी बना रही थीं। उसके साम्राज्य की जैन जनता ने उसे तथा उसके जाति भाइयों को ध्वज के विरुद से विभूषित किया।

हरिवंश पुराण के अनुसार राजा जन्मेजय के बाद पुष्यमित्र ने अश्वमेध का पुनरुद्धार किया किया। पुष्यमित्र की भाँति उसके समकालीन सातवाहन नरेश शातकर्णि ने भी दो बार अश्वमेध यज्ञ किया, और उसका भी यह विचार था कि उसने बड़ी पुरातन प्रथा का फिर से प्रारम्भ किया है। हम देखेंगे कि चौथी शताब्दी ई० के उत्तरार्द्ध तक इसके पश्चात् देशी नरेशों में से समुद्रगुप्त की अपेक्षा और उससे पूर्व ही चेदि देश और महाराष्ट्र के भारशिव और वाकाटक राजाओं ने भी अश्वमेध यज्ञ करके ख्याति अर्जित की थी। इस तरह इन सात शताब्दियों में जितने भी नये प्रबल नरेश खड़े हुये, सभी ने अश्वमेध यज्ञ का फिर से प्रचार करना अपना कर्त्तव्य समझा। भारतीय इतिहास की रूपरेखा पृ० ८०६ पर श्री जयचन्द्र विद्यालङ्कार लिखते हैं—" भारतीय नरेशों और राष्ट्रों के जीवन में अश्वमेध यज्ञ का पुनरुद्धार जिस भाव की सूचना देता है, उसका अभिप्राय अत्यन्त स्पष्ट है। वह बौद्ध और जैन आदर्शों के विरुद्ध एक गहरी प्रतिक्रिया था। बौद्ध और जैन धर्म का एक दम मटियामेट कर वैदिक संस्कृति को फिर उभारना और

उसे फैलाना था। जो केवल राजनीति के क्षेत्र तक ही सीमित न थी, बल्कि इस युग के समूचे मानवीय जीवन तक फैली थी। सुप्रसिद्ध मनुस्मृति में जो कि ठीक आरम्भिक शुङ्ग काल की उपज है, इस नई प्रतिक्रिया और आदर्श को हम फैला हुआ पाते है। जिनमें विचारों ने अत्यन्त उग्रस्थान पा रखा है। शुङ्ग और सातवाहन दोनों ही ब्राह्मण थे; और मनुस्मृति डंके की चोट पर ब्राह्मणों की प्रमुखता की घोषणा करती है। अशोक ने अपनी सन्तति को 'लघुदण्डत:' का उपदेश दिया था, मनुस्मृति का लेखक उससे उल्टा कौटिल्य के शब्दों को दोहराता हुआ पुकार कर कहता है "नित्य मुद्यतदंड: स्यात्"—सदा अपने दंड उद्यत रक्खे।"

खारवेल पुष्यमित्र का प्रतिद्वन्दी था, अत: मनुस्मृति के निर्माण के समय युद्ध में न सही तो राजाज्ञा द्वारा समाज की व्यवस्था किये जाने के समय मनुस्मृति में ध्वजो के लिये यह व्यवस्था की गई:—

नराज्ञः प्रतिगृह्णीयाद् राजन्य प्रसूतितः।<br>
सूना चक्रध्वजतां वेषेणैव च जीवताम्॥<br>
दशसूना समं चक्रं दशचक्र समोध्वजः।<br>
दश ध्वज समोवेशो दश वेश समोनृपः॥<br>
दशसूना सहस्राणि योवाह यति सौनिकः।<br>
तेनतुल्यः स्मृतो राजाघोरस्तस्य प्रतिग्रहः॥

मनु०—४—८४,८५,८६

अर्थात् बिना क्षत्रिय के उत्पन्न राजा से दान न लेवे। सूना (जीवों के मारने के स्थान), गाड़ी, तथा ध्वजों के समान वृत्ति करनेवाले और बहुरूपियों के भी (धन को ग्रहण न करे)। दश सूनावाले के बराबर एक गाड़ीवाला है और एक गाड़ीवाले

के समान एक ध्वज है और दश ध्वज के समान एक वेष वाला, दश वेष वालों के बराबर वह एक राजा है।

इस प्रकार मनुस्मृति की तरह विद्यमान महाभारत का एक बहुत बड़ा अंश भी इसी शुङ्ग युग की रचना है और उसके अन्तर्गत भगवद्गीता भी महामहोपाध्याय श्री काशीप्रसाद जी जायसवाल जी के कथनानुसार मनुस्मृति वाले आदर्शों से अनुप्राणित है। सम्भवतः वे इसे भी इसी युग की उपज मानते हैं, किन्तु वैसा माने बिना भी कहा जा सकता है कि गीता के आदर्शों को इस युग में पुनर्जीवित किया गया। बौद्धों और जैनों ने अहिंसा का हौआ खड़ा कर दिया था, गीता की स्पष्ट शब्दों में घोषणा थी कि—"हत्वापि स इमाल्लोकान न हन्ति न निबध्यते" वह मार कर भी नहीं मारता और न पाप के बन्धन में फँसता है। निष्काम आदर्श की साधना के लिये हिंसा और अहिंसा दोनों साधन मात्र हैं।

किन्तु वैदिक युग के जीवन और संस्कृति अपने पहले रूप में कभी वापिस न आ सकते थे, और न आज तक आ सके, और न बौद्ध और जैन विचार जड़ से मिट सकते थे। वैदिक संस्कृति के पुनरुद्धार के पक्षपाती बस, केवल रस्में पूरी करते रह। उन्होंने बौद्ध और जैन धर्म की सुधार की लहर में से सब अच्छा अंश अपना लिया था। स्वयं गीता और मनुस्मृति पर बौद्ध प्रभाव की स्पष्ट छाप है। वैदिक धर्म के पुनरुद्धार के जतन से जो नया धर्म पैदा हुआ, वह था तमाम धर्मों का खिचड़ी धर्म पौराणिक न कि वैदिक। पुराने प्रकृति देवताओं और उनके यज्ञों के स्थान में अब हम अवतारों और साकार देवों के मन्दिरों को खड़ा होता देखते हैं। प्रकृति देवताओं के मूर्तरूप अब भारत-वर्ष के प्रत्येक रमणीक तीर्थ स्थान में स्थापित होने लगे। परि-

गाम स्वरूप उनका जन-समाज पर धीरे-धीरे प्रभाव भी पड़ता रहा और जनता प्रचलित पौराणिक धारा मे अवाधगति से बहने लगी।

यजुर्वेद के अन्तिम अध्याय लगभग इसी समय पूर्ण किये गये। जब कि पेशों अथवा व्यवसायों के अनुसार जातियाँ मानी जाने लगीं। "कीलालाय सुराकारं" वाला यजुर्वेद का मंत्र इसी युग की रचना है। जिसके आधार पर शुंगों और काण्वों के समय के बाद धीरे-धीरे 'शौण्डिक' शब्द की परिभाषा सुराकार मानी जाने लगी।

जैन खारवेल को भी इस धारा की प्रवाह में प्रवाहित हुआ हम देखते है। अश्वमेध यज्ञ न सही तो उसने राजसूय यज्ञ करके अश्वमेध याज्ञियों को मात दी। यद्यपि ये यज्ञ जो प्राचीन भारतीय राजसंस्था के सिद्धान्तों के प्रकाशन थे न तो शुद्ध वैदिक थे न बौद्ध।*

हम पिछले पन्नों में लिख आये हैं कि मौर्यों का साम्राज्य स्थापित होने से पूर्व पश्चिम में शिवियों, यौधेयो, मालवों, सजातो, आभीरों, वृष्णियों आदि के अनेक छोटे छोटे गणराज्य थे। जो मौर्यों के उत्थान के समय में या तो समाप्त हो गये या उनके अधीनस्थ छोटे-छोटे मांडलिको (तहसीलों और जिलो) के रूप में चल रहे थे, जो स्वतंत्रता जैसी चीज के उपभोग से वंचित थे। अब साम्राज्य के टूटने पर यवनों के हमलों के कारण जब उथल पुथल हुई तो उन्होने स्थान्तरण करके फिर से अपनी सत्ता स्थापित की। दक्षिणी पंजाब में मौर्यों से पूर्व जिस मालव राष्ट्र ने सिकन्दर के आक्रमण के समय प्रबल रूप से उसका सामना किया था उसने अपने स्थान से दक्षिण जय-

*देखिये भारतीय इतिहास की रूपरेखा पृष्ठ ८११

पुर राज्य से भी दक्षिण चल कर मालवों का केन्द्र स्थापित किया। धीरे धीरे मालवों के नाम पर यह प्रदेश मालव प्रदेश कहा जाने लगा। मालव गण के साथ साथ शिवि लोग भी पंजाब से चलकर राजपूताना में मालवों के ठीक दक्षिण बस गये। मालवों के ठीक उत्तर आर्जुनायन उठे। यह गणराज्य नया था। सतलज के निचले प्रवाह पर यौधेयों का गणराज्य था। जहाँ तक सिकन्दर पहुँच नहीं सका था और इसीलिये यौधेयों से उसकी मुठभेड़ नहीं हुई थी। इस समय यह भी उठे। सुराष्ट्र में सुप्रसिद्ध वृष्णिगणों का गणराज्य स्थापित हुआ। उन वृष्णि-गणों के लगभग १०० ई० पूर्व के दो सिक्के मिले हैं।

इस युग में यदुवंशीय वृष्णि, भोज, अन्धक, सत्वात आदि कुलों में से वृष्णियों में भागवत (वैष्णव) धर्म का जोर बढ़ा। दूसरी शताब्दी ई० पूर्व सम्भवतः खारवेल की मृत्यु हो गई। उसके बाद उसके वंशजों में सम्भवतः इतनी सामर्थ्य नहीं रही कि वे साम्राज्य की रक्षा कर सकते।

श्री जयचन्द्र विद्यालंकार भारतीय इतिहास की रूपरेखा पृष्ठ ८२६ पर लिखते हैं —

"कलिंग का खारवेल अभी तक भारतीय इतिहास का धूम-केतु प्रतीत होता था उसके बाद उसके वंश की केवल स्थानीय सत्ता कलिंग में रह गई। यही अब तक माना जाता था, किन्तु बिलकुल हाल में श्रीयुत काशीप्रसाद जायसवाल ने शक सात-वाहन इतिहास पर जो नई रोशनी डाली है, उसमें उन्होंने यह स्थापना पेश की है कि पुराणों और जैन अनुश्रुतियों में शकों के आक्रमण के पहले नवविनो में जिस गर्दभिल राजा के चौदह वर्ष के राज्य का उल्लेख है, वह खारवेल का कोई वंशज था। बेशक, यह केवल कल्पना है, किन्तु यह जितनी कौशलपूर्ण है, उतनी ही सम्भव भी है। पुराने इतिहास में इससे बड़ा साम-

जस्य हो जाता है। इसलिये थोड़े बहुत परिवर्तित रूप में इसके सच निकल आने की बड़ी आशा है। पुराणों के अनुसार गर्दभिल्ल लोग आन्ध्रों के समकालीन थे और उनके सात राजाओं ने ७२ वर्ष राज्य किया था। जायसवाल जी का कहना है कि ये ७२ वर्ष खारवेल के समय से उज्जैन पर शकों के आक्रमण तक के समय ( १७४ ई० पूर्व ) को सूचित करते हैं।"

"यदि खारवेल के वंशजों* ने उसके जीते हुए प्रदेशों—आव, मूषिक, और विदर्भ—पर अपना अधिकार बनाये रक्खा हो तो अन्तिम गर्दभिल्ल ने विदर्भ से माहिष्मती के रास्ते बढ़कर उज्जयिनी को लिया होगा। उज्जयिनी का शुंगों के हाथ से निकलना शुंगों के पतन के प्रारम्भ का सूचक है। अभी तक कलिंग के चेदियों का राज्य उसके दक्षिण पूर्व और दक्षिण लगता था, अब पश्चिम तरफ भी घिर गया। सातवाहनों के सब रास्ते चेदि राज्य के इस प्रकार बढ़ने से रुक गये।"

खारवेल के बाद उत्तर पश्चिम से हूणों, शकों, तुखारों और ऋषिकों के हमले आरम्भ हो गये। जो एक के बाद दूसरे होते रहे। इन आक्रमणों के फलस्वरूप वृष्णियों के गणराज्य का अन्त हो गया। इन आक्रमणों को प्रोत्साहित करने के मूल में जैन आचार्य कालक था जो राजा गर्दभिल्ल के किसी व्यवहार से असन्तुष्ट होकर फारस की ओर चला गया था और साखकुल ( शकों के कबीलों ) के राज्य में रहने लगा था। कालान्तर में शकों को उभाड़ कर वहीं लाया और सबसे पहले उसने वृष्णि और कुकुर संघ का अन्त किया।

अन्तिम खारवेल जिसका उल्लेख ऊपर गर्दभिल्ल करके किया गया है, उसका राज्य ई० पूर्व ८६ में समाप्त हुआ था। शकों ने

*ऐरवेल,—खारवेल,—खुरवेल,—नरवेल, दरवेल — खरवेल,—खारवेल (द्वितीय)। जो दक्षिण में 'वेल' का 'भिल' कहे गये।

उज्जैन तक अधिकार कर लिया और महाक्षत्रप की उपाधि धारण कर अपने राज्य का विस्तार किया। काठियावाड, गुजरात, कोंकण, पश्चिमी महाराष्ट्र और पश्चिमी मालवा सब महाक्षत्रप नहपान के अधीन हो गया। मथुरा जो इस समय तक शुगों के अधिकार में रही--हगान क्षत्रप का उस पर अधिकार हो गया।

मनुस्मृति जिसकी रचना के सम्बन्ध में हम ऊपर लिख आये हैं, श्री जयचन्द्र जी विद्यालंकार भारतीय इतिहास की रूप रेखा पृ० ६९५ पर लिखते हैं कि "मनुस्मृति और यज्ञवल्क्य-स्मृति जो भारतीय समाज के जीवन को अनेक पहलुओं में आज तक नियन्त्रित करती आती है, इसी सातवाहन-युग की कृतियाँ हैं। जो दूसरी शताब्दी ई० के आरम्भ के बीच किसी समय बनी थी।"

महाभारत और वाल्मीकि रामायण के सम्बन्ध में हिन्दू राज्यतंत्र द्वितीय भाग पृ० १४३ पर श्री काशीप्रसाद जायसवाल ई० पाँचवीं शताब्दी पूर्व में इसकी रचना को हुआ मानते हैं और दूसरी शताब्दी पूर्व में इसका द्वितीय बार सम्पादन। श्री जयचन्द्र जी का दृष्टिकोण है कि इनके अनेक अंग जैसे दिग्विजय पर्व, राज धर्म पर्व की रचना शुगों के समय में हुई है। रामायण महाभारत की अपेक्षा काव्य साहित्य के सृजन का आरम्भ शुगों के बाद कण्वों के समय में आरम्भ हुआ है। जिसको सिद्ध करने के लिये उन्होंने अनेकों तर्कपूर्ण प्रमाण दिये हैं।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भेद की परिपक्वता इसी युग में आई। कुछ जातियाँ जो मूलत क्षत्रिय थीं, किन्तु व्रतों--नियमों को छोड़ देने से व्रात्य हो गईं और वे पौण्ड्रक, ओड्र, द्रविड, काम्बोज, यवन, शक, पह्लव, चीन, किरात, दरद और खश थीं। यही नहीं--ब्राह्मण से वैश्य कन्या में अम्बष्ठ पैदा

होता है,—वैश्य से क्षत्रिय स्त्री में मागध. और ब्राह्मण स्त्री में वैदेह। ब्राह्मण से अम्बष्ठ कन्या में आभीर। व्रात्य ब्राह्मण से (व्रात्य ब्राह्मणी में) भूर्जकण्टक और आवन्त्य पैदा होते हैं; व्रात्य क्षत्रिय से झल्ल, मल्ल, लिच्छवि। खस और द्राविड़; वैश्य व्रात्य से कारूष और सात्वत। इन कल्पनाओं की अनर्गलता और निरर्थकता हस्तामलकवत् प्रकट है। क्योंकि यवन, आभीर, द्राविड़ और निषाद लोगों के समूह थे और अम्बष्ठ, आभीर, आवन्त्य, मागध और वैदेह राष्ट्रीय लोग थे। हम पिछले पन्नों में यह बता आये हैं कि सातवाहनों का राज्य आरम्भ में महाराष्ट्र में आरम्भ हुआ था। पश्चात् यह आंध्र देश के प्रतिष्ठान नामक स्थान में चला गया और प्रतिष्ठान ही इन सातवाहनों की राजधानी बना था। शकों के उत्थान के समय—१०० ई० पूर्व—शुङ्ग वंश का अन्त हो गया। अन्तिम शुङ्ग राजा को उसके ब्राह्मण मंत्री (काण्व गोत्र) ने मार कर राज्य छीन लिया। इस वंश ने मगध में चार पीढ़ी राज्य किया। ठीक इसी समय उज्जैन से पुष्कर होता हुआ शकराज्य मथुरा तक पहुँच गया था। पुष्कर के समीप मालव-गण और शक क्षत्रप उषवदात से घोर-युद्ध हुआ। मालवगण हार गये। यह देख प्रतिष्ठान नरेश सातवाहनों में से गौतमी पुत्र शातकर्णि तथा अन्य अनेक गण-शासकों ने क्षत्रपों के विरुद्ध शक्ति का विशाल संचय किया। शक क्षत्रप युद्ध में पराजित किया जाकर उस प्रदेश से निकाल दिया गया। इस विजय के फलस्वरूप एक संवत् की स्थापना हुई। कहते हैं गौतमी पुत्र शातकर्णि का विरुद (उपाधि) विक्रमादित्य की थी, अतएव वही संवत् वि० संवत् के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

सातवाहनों के बाद भारशिव और इनके बाद वाकाटक और गुप्त भारत के प्रबल शासक हुए।

सातवाहनों के शासन के समय से पूर्व मौर्यों, शुङ्गों और

कारवों के समय में साम्राज्य की ओर से शासन-सम्बन्धी जिस प्रणाली का प्रचलन था—उसका श्री काशी प्रसाद जी जायसवाल के हिन्दू राजतंत्र में भली प्रकार उल्लेख मिलता है। जिसमें बतलाया गया है कि साम्राज्य की ओर से न्याय का कार्य न्यायी (जज) लोग करते थे। नगर ही नहीं गाँव में भी शासन का प्रबन्ध राज्य की ओर से होता था। देश में शान्ति स्थिर रखने के लिये (शान्तिक) पुलिस का अच्छा प्रबन्ध था। और नगरों में सफाई रखने के लिये म्युनिसिपैलटियाँ थीं, जिन्हें पौर जानपद कहा जाता था। खारवेल ने पौर जानपदों के साथ बहुत कुछ उदारतायें प्रकट की थीं। कहते हैं केवल अच्छी बातें ही राजा के हाथों में नहीं आ गई थीं, बल्कि बुरी बातों पर भी राज्य का अधिकार या शासन हो गया था। वेश्याएँ एक राजकीय विभाग के अधीन कर दी गई थीं, द्यूत क्रीड़ा या तो सरकारी इमारतों में होती थी या उन इमारतों में होती थी, जिनके लिये सरकार से अधिकार पत्र या लाइसेंस मिलता था, और भोजनालय तथा मद्य की दूकान भी राजकीय विभाग के अधीन हो गई थीं। खानों पर भी राज्य का पूरा पूरा अधिकार था, बल्कि हम इस समय की भाषा में कहें तो वे एकमुख कर दी गई थीं।*

वैदिक साहित्य में मद्य को 'कीलाल' की संज्ञा दी गई है। अब भी 'कीलाल' कहा गया है। अतएव मद्य विक्रय स्थल को 'कीलाली' कहा जाने लगा और उसके विक्रेता को कल्यपाल या कलाल। शौण्डिक जो रण प्रिय योद्धाओं की सन्तान थे उनमें से कुछेक जिन्होंने 'कीलाल' का व्यवसाय अपनाया वे कलशुण्डि कहे जाने लगे। यह कलशुण्डि शब्द बिगड़ कर कलसुंडि बना और इसी कलसुंडि जाति के लोगों को दक्षिण प्रदेश में उसी

* हिन्दू राज्यतंत्र द्वि॰ खंड पृ॰ ३६४—३६५

चुरि वंश

प्रकार 'कलचुरि' कहा जाने लगा जिस प्रकार से गुजरात के 'सोलंखियों' को 'चालुक्य'।

रायबहादुर डा० हीरालाल ने 'जबलपुर ज्योति' पृ० २३ के फुटनोट में लिखा है:—"यहां पर नोट करने योग्य बात है कि श्रीनारायण चन्द्रशाह बी० ए०, बी० एल० (वकील हाईकोर्ट, कलकत्ता) ने, जो कलवारों (शौण्डिक) की उत्पत्ति सिद्ध की है वह कलचुरियों के पंथ से अधिकतर पुष्टि पाती है। महाभारत के अनुशासन पर्व (३५—१०) में लिखा है, कि शौण्डिक क्षत्रिय थे, परन्तु ब्राह्मणों के कोप से वृषलत्व को प्राप्त हुए और अग्निपुराण (२७४ १०) में लिखा है कि शौण्डिक हैहयों की एक शाखा थी। कलचुरि राजाओं के ताम्रपत्रों से स्पष्ट है कि कलचुरि भी हैहयों की शाखा थी। (हेलागृहीतपुनरुक्तसमस्तशस्त्रो गोत्रे जयत्ययिक्रमस्य स॰ कान्तवीर्य्यः। अत्रैव हैहयनृपान्वयपूर्वपुंसि राजेति नाम शशलक्ष्मणि चक्षमेयः॥ सहिमाचल इव कलचुरिवंशमसूत क्षमाभृतां। मुक्तामणिभिरिवामलवृत्तैः पूतं महीपतिभिः॥)। स्पष्टतः पाशुपतपंथी हैहय मदिरा का विशेष उपयोग करते थे। वे या उनके संबंधी उसको बनाते भी रहे होंगे। ज्ञात होता है कि इसी कारण से, जो हैहय कल (कल्य या कल्प=मदिरा) चुरि = चुराने अर्थात् पकाने लगे उनका नाम कलचुरि पड़ गया। कालांतर में इस शाखा के जो लोग अपने क्षात्र धर्म्म ही में संलग्न रहे आए वे कलचुरि ही कहलाते रहे और जिन्होंने मदिरा बनाने का उद्यम उठा लिया उन्होंने व्यवसायसूचक कल्यपाल की पदवी धारण करली हो। इसी कल्यपाल का आधुनिक अपभ्रंश कलवार या कलार है।

———